योगवाणी

वर्ष ५१, जुलाई २०२६

योगवाणी

वर्ष ५१, जुलाई, २०२६

आर.एन.आई. २९०७५/७६

अहंकार को तोड़ देना चाहिए, सद्गुरू की खोज करनी चाहिए। निष्पक्ष तथा निर्मल योगमार्ग की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं प्राप्त होता है। योग की सिद्धि के लिए सिद्ध पुरुष का सत्संग करना चाहिए।

महायोगी गुरु श्री गोरखनाथ जी

वार्षिक सदस्यता : १२५/-
द्विवार्षिक सदस्यता : २५०/-
पंचवार्षिक सदस्यता : ६००/-
आजीवन सदस्यता : १२००/-
एक प्रति का मूल्य : १५/-

मुद्रक:
मोती पेपर कनवर्टर्स
डी-४/१, सेक्टर १३
गीडा, गोरखपुर
दूरभाष : ०५५१-२५८००९३

विषयानुक्रम

	पृष्ठ
जीवनामृत	
श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः	०२
योगामृत	०३
गोरखवाणी	०४
नाथपन्थ एवं दर्शन	
नवनाथ कथा - महायोगी गोरखनाथ	०५
ज्यों जल बिन मीन, त्यों गुरु बिन नाथ- 'नवनाथ भक्तिसार' में वर्णित गुरु विरह की अनन्य व्याकुलता -डॉ० सुप्रिया प्रभाकर जोशी	०६
प्रश्नोपनिषद् में प्राण विद्या - संगीता कुमारी	१४
धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्म	
पिबत भागवतं रसमालयम् - प्रो. हरिप्रसाद अधिकारी	१७
भगवान् परशुरामः युगों को जोड़ने वाले चिरंजीवी आचार्य - रविभूषण द्विवेदी	२०
भारतीय ज्ञान परम्परा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण - डॉ० राजेश कुमार त्रिपाठी	२२
हमारा जीवन एवं स्वास्थ्य	
रील संस्कृति या भाण परम्परा - रंजीत कुमार	२७
पर्व विशेष	
गुरु पूर्णिमा - डॉ० राकेश कुमार तिवारी	३०
परंपरायें स्पंदित गुरु-तत्त्वः एक दार्शनिक विमर्श और जीवन-साधना - प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल	३२
चतुर्थ आवरण	
स्वास्थ्य रक्षा में आम का उपयोग - प्रशान्त कुमार सैनी	

॥ ॐ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

योगवाणी

(धर्म-संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान मासिक पत्रिका)

संस्थापक-सम्पादक

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ

प्रधान-सम्पादक

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ

प्रबन्ध-सम्पादक

डॉ. प्रदीप कुमार राव

सम्पादक

डॉ. प्रांगेश कुमार मिश्र

प्रकाशक

श्री गोरखनाथ मन्दिर

गोरखपुर - २७३०१५

web: www.gorakhnathmandir.in

E-mail: yogvanigmndr@gmail.com

दूरभाष : (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४

९४५२५६९७१७ - ८८५८८६१३५३

॥ श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ॥

गुह्यकप्रेतकव्यादशाकिनीग्रहभञ्जकः ।
गतोपसर्गो ग्रन्थज्ञो, गौरभूतिविभूषितः ॥६॥

गौराङ्गो गण्डमुद्रास्यो, गौतमीनाथ एव च।
गन्धात्मा गौतमत्राता, गुरुतत्त्वार्थपारभृत् ॥७॥

गोरण्णाथो गवांनाथो, गोमान् गोब्रह्मपालकः ।
गतक्रूरो गभीरात्मा, गभस्तिशतचक्रभृत् ॥८॥

गणपो गणनाथश्च, गणस्वामी गिरिप्रियः।
गुरुदयो गुरुप्राच्र्यो, गुरुदेवो गवेषकः ॥९॥

गगनो गतिमान् गौरतेजा गम्भीरशुद्धभूः ।
गतपाप्मा च ग्रन्थाग्रयो, ग्रामवासिजनार्थदः ॥१०॥

गुरुभर्गो गतव्यग्रो, ग्रहपीडादिघस्मरः ।
ग्रामरक्षणसन्दक्षो, गर्वकक्षहुताशनः ॥११॥

गर्मुदद्भुतरुपाढ्यो, गान्धर्वीभीभयात्मकः ।
गीर्वाणेतरगोत्रघ्नो, गणेशाशेषदर्पहा ॥१२॥

गीर्वाणगणदुर्दर्शो, गोब्रह्मभयभञ्जनः ।
गतक्षोभो ग्रन्थनेता, गूढकालयमान्तकः ॥१३॥

ग्रस्तासाध्यमहारोगो, गुणवन्महदर्थदः ।
गुरुधर्माग्रगण्यात्मा, ग्रहपीडादिमर्दकः ॥१४॥

गुणाकारो गुणान्तःस्थो, गुणत्रयनिषेधकृत् ।
गोकोटिर्गोग्रहेशानो, ग्रस्तमायो गदप्रियः ॥१५॥

■

योगामृत

गोरक्ष उवाच :

गुरुजी! कौन मुख आवे? कौन मुख जाये?
कौन मुख होय काल को खाय?
कौन मुख होय ज्योति में रहे? सतगुरू होय सो बुझाय कहे ॥९७॥

भावार्थ– हे गुरू ! किसके सन्मुख आवे, जावे और काल को खावे, कौन मुख होय ज्योति में समाय रहे।

मत्स्येन्द्र उवाच :

अवधू ! सहज मुख आवे, शक्ति मुख जाय, निष्पक्ष हो काल को खाय।
निराश मुख होई ज्योति मे रहे, ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ॥ ९८ ॥

भावार्थ– हे शिष्य ! साधना सन्मुख आवे जावे बहिरंग क्रिया तथा प्राणायाम क्रिया भेद में साधन सन्मुख निरपेक्ष होकर मुत्यु का अपघन करे और निराश सन्मुख होय ज्योति (चेतन) में समाये रहे।

गोरक्ष उवाच :

गुरूजी ! कौन सो काया? कौन सो प्राण? कौन पुरूष का धरिये ध्यान।
कौन स्थान धर काल सो रहे? सतगुरू होय सो बुझाय कहे ॥ ९९ ॥

भावार्थ– हे गुरु ! वस्तुतः शरीर कौन है? प्राण कौन है?
किस पुरूष का ध्यान करना चाहिये? किस स्थान पर मन मृत्यु भय से दूर रहता है?

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! पवन सो काया मन सो प्रान, परम पुरूष का धरिये ध्यान।
सहज स्थान धरकाल सो रहे, ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ॥ १०० ॥

भावार्थ– हे शिष्य ! मनोमय सृष्टि साधक के प्रयाण में मन ही शरीर है, प्राण पावन है, परमात्मा का ध्यान करना चाहिये साधन स्थान स्थित मन मृत्यु से दूर रहता है।

(गोरक्ष-मत्स्येन्द्र संवाद)

■

गोरखवाणी

नाथ कहतां सब जग नाथ्या गोरष कहतां गोई।
कलमा का गुर महंमद होता पहलैं मूवा सोई॥ ११ ॥

केवल शब्द मात्र रटते रहने से उसमें अनुस्यूत आध्यात्मिक तत्त्व से वंचित होना पड़ता है। 'नाथ' शब्द बहुत ही मार्मिक है, नाथ का तात्पर्य है उस परमात्मा से, परब्रह्म शिव से, जो माया को नियंत्रित कर अपने वश में रखता है, पर 'नाथ' मात्र के उच्चारण से कोई यह सोचे कि वह माया के बंधन से मुक्त है तो युक्तिसंगत नहीं है। 'गोरख' शब्द का तात्पर्य उस महान् यौगिक विश्वब्रह्म से है, जिनके द्वारा अध्यात्म का तत्त्व सुरक्षित रहता है और जिनके नाम के उच्चारण मात्र से अंतर्जीवन जाग उठता है। पर जो लोग 'गोरख' का नाम लेते हैं, वे केवल शब्द मात्र का उच्चारण करते हैं इसलिए उनके लिए आध्यात्मिक तत्त्व का अनावरण अथवा प्रकाशन नहीं हो सकता इसी तरह (हे काजी) इसलाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब ने 'कलमा' का प्राकट्य किया। यह 'कलमा' दिव्य शक्तिप्रदाता, आध्यात्मिक जीवनदाता पवित्र वचन है पर केवल इसके उच्चारण मात्र से ही काम नहीं चल सकता। कलमा से अंतर्जीवन का मर्म प्रकाशित करना चाहिए। मुहम्मद साहब का पार्थिव शरीर तो नहीं रह गया है, पर उनका कलमा (अक्षरब्रह्म) अमर है, अक्षर है, परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है।

सारमसारं गहन गंभीरं गगन उछलिया नादं।
मानिक माया फेरि लुंकाया झूठा बाद-बिबादं ॥ १२ ॥

योगी योगाभ्यास के द्वारा कुंडलिनी, प्राण-ज्योति को जगाते हुए सहस्रार में प्रवेश करने पर अनाहत नाद, शब्द ब्रह्म के स्वरूप अथवा बोध का रसास्वादन करता है। अनाहत शब्द निगूढ़तम है- यही परम वस्तुतत्त्व है। अनाहत शब्द से ब्रह्मस्वरूपानुभवरूपी माणिक्य अमूल्य वस्तुरत्न की प्राप्ति होती है और यह बात पूर्ण रूप से समझ में आ जाती है कि मुख्य वस्तु ब्रह्मानुभूति, परमात्मपद में रमण है, इससे इतर अन्य ज्ञान मिथ्या वाद-विवाद मात्र है।

■

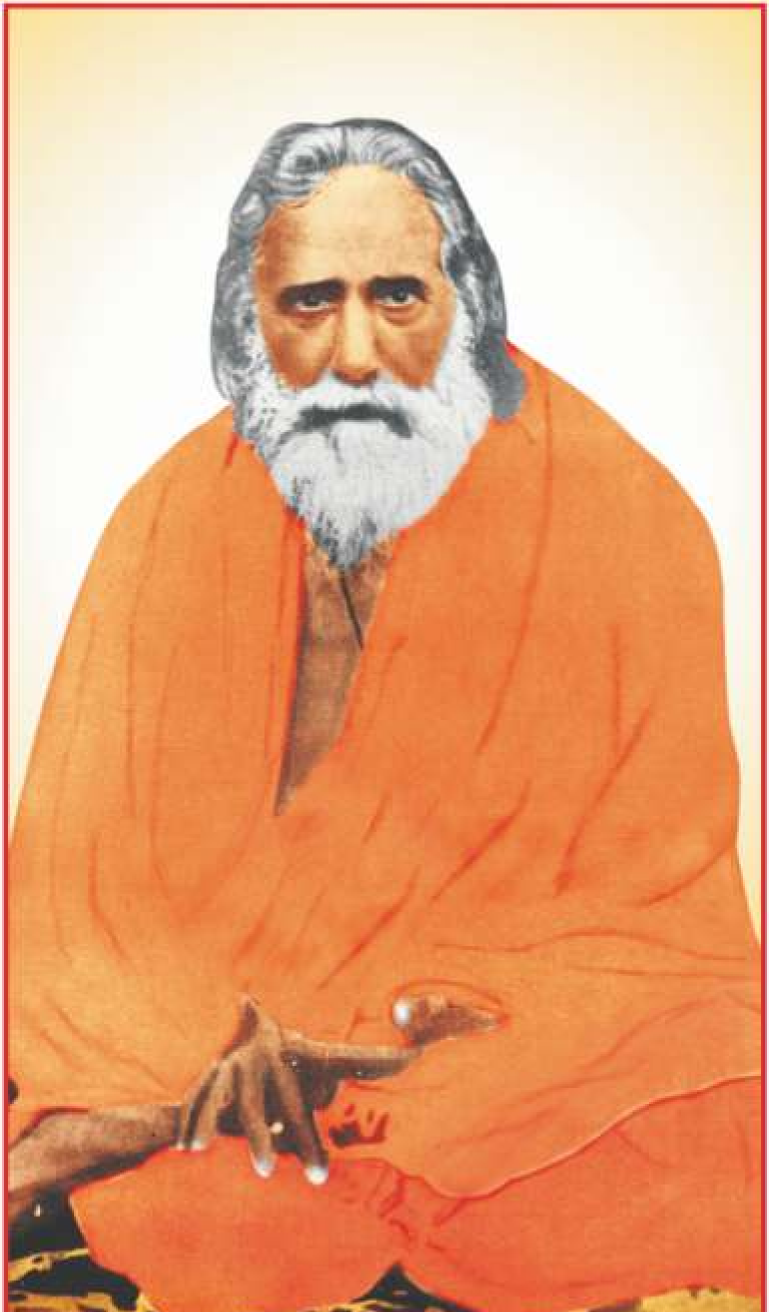

योगिराज बाबा गम्भीरनाथ

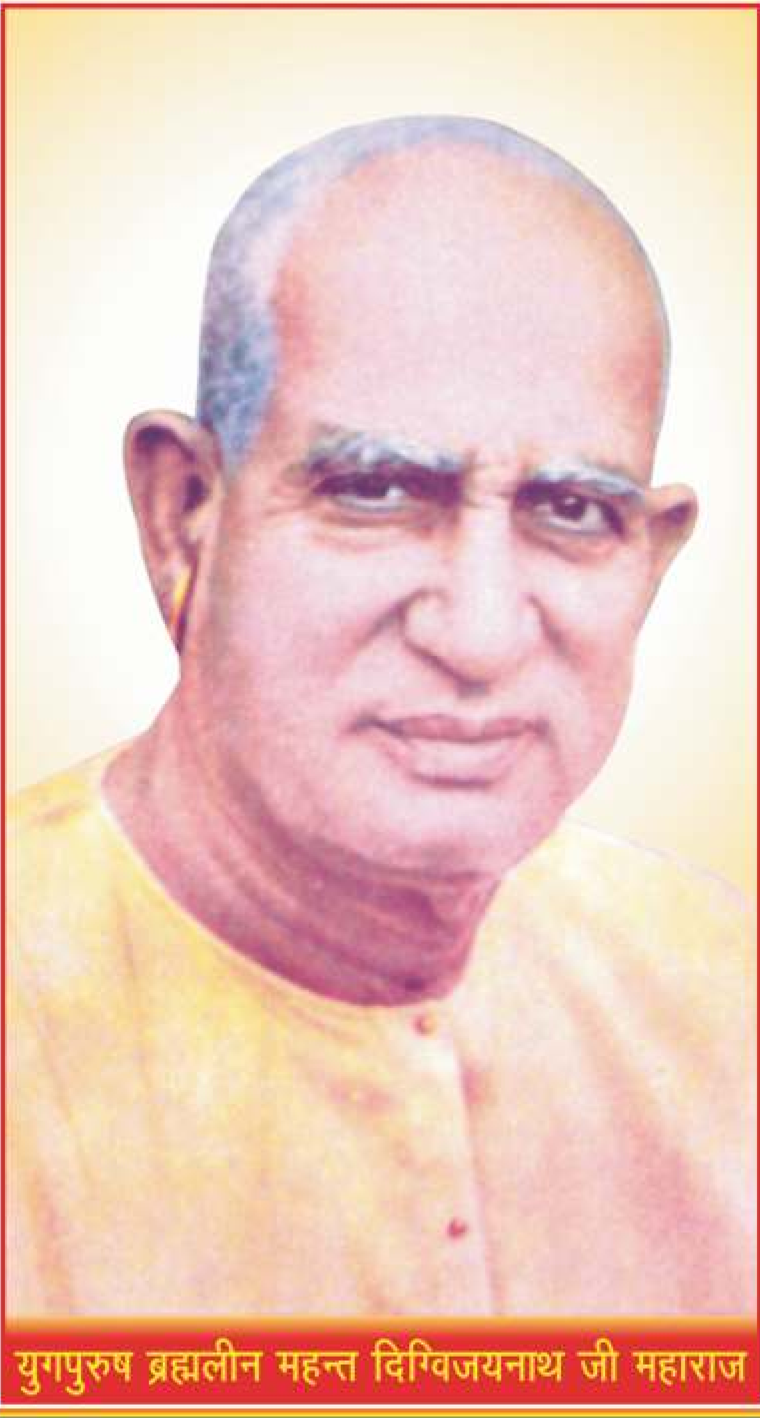

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज

नवनाथ कथा - महायोगी गोरखनाथ

गोरक्षनाथ की उत्पत्ति भी दो रूपों में देखी गई है। व्यक्तित्व के रूप में गोरक्षनाथ शिवावतार हैं। 'हठयोग प्रदीपिका' में उल्लेख है कि आदिनाथ शिव ने योगमार्ग के प्रचारार्थ गोरख का रूप ग्रहण किया था। सर्वनिरपेक्ष, कालातीत होने के कारण वे सभी युगों और सभी कालों में विद्यमान रहते हैं। गोरक्षनाथ किस वंश के थे और किसके पुत्र थे, इस संबंध में अनेक मत हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में इनके गुरु मत्स्येंद्रनाथ की कृपा या उनके आशीर्वाद का बड़ा हाथ रहा है। इनके उच्च संस्कारों और आचारों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ये द्विजाति वंश के थे। कुछ विद्वान् मानते हैं कि गोरक्षनाथ का समय ५वीं शताब्दी से लेकर १७वीं शताब्दी के मध्य रखा जा सकता है। गोरक्षनाथ को कबीर (१४४०-१५१८ ई.), नानक (१४६९-१५३८ ई.), बाबा फरीद एवं मधुसूदन सरस्वती (लगभग १७०० ई.) से भी संबद्ध बताया गया है, जो उनके व्यापक एवं अपरिहार्य प्रभाव का द्योतक है। उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न विद्वानों ने गोरक्षनाथ के समय के संबंध में एक लंबी अवधि का संकेत दिया है। व्यक्ति के रूप में हजारों वर्षों तक किसी का भी जीवित रहना असंभव है। ऐसी स्थिति में अनुमान लगाया जाता है कि गोरक्षनाथ नाम के एक व्यक्ति ने ८वीं, ९वीं शताब्दी अथवा इससे भी पूर्व बौद्ध विकृतियों के विरुद्ध संयमपूर्ण एवं शुद्धाचरण-प्रधान साधना को अपनाया होगा। इसी परंपरा में १०वीं से ११वीं शताब्दी के मध्य गोरक्ष के किसी अन्य गोरक्ष नामधा व्यक्तित्व ने युगानुकूल एक विशाल धार्मिक व सांस्कृतिक संगठन किया। आदिगोरख एक उत्कृष्ट कोटि के साधक थे तो परवर्ती गोरक्ष एक सफल संगठनकर्ता। उन्होंने योग विषयक उपदेश मौखिक रूप से ही तत्कालीन जनभाषा में दिए, जो लोकविश्रुत होकर कुछ विशिष्ट जनों तक सीमित क्षेत्र तक सुरक्षित रह सके। अनुकूल अवसर प्राप्त कर बौद्धों के पतन युग में ये उपदेश प्रकाश में आ सके। ■

*साभार, नाथपंथ, डॉ० प्रदीप कुमार राव, डॉ० पद्मजा सिंह

ज्यों जल बिन मीन, त्यों गुरु बिन नाथः 'नवनाथ भक्तिसार' में वर्णित गुरु-विरह की अनन्य व्याकुलता

***डॉ सुप्रिया प्रभाकर जोशी**

विश्व-पटल पर भौगोलिक स्थान की दृष्टि से १९६ देशों में भारत ७ वें स्थान पर है। भारतवर्ष ने सम्पूर्ण विश्व को अपनी वैदिक संस्कृति, सभ्यता तथा आदर्शों के माध्यम से निरतंर मार्गदर्शक बनकर काम किया। भारत की उन्नति आज हुई है या निरतंर सभी क्षेत्रों में अग्रसर है उसका मूल कारण हमारी समृध्द संस्कृति की जडें हैं। एक सामान्य मनुष्य को समृध्द जीवन जीने के लिए जिस तरह माता-पिता एवं परिवार की आवश्यकता होती है। उसी तरह मनुष्य के जीवन में माता-पिता के साथ ही बेहद आवश्यक है - गुरु ।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में सच्चे गुरु को तत्त्वदर्शी संत कहते हुए परिभाषित किया है-

'उर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस्तं वेद स वेदवित् ॥' [१]

आदि शंकराचार्य भी कहते हैं कि

शरीरं सुरुपं तथा वा कलत्रं, यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे, ततः किं,ततः किं, ततः किं,ततः किम्॥
कलत्रं धनं पुत्र पौत्रादि सर्वं,गृहं बान्धवाः सर्वमेतध्दि जातम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे, ततः किं,ततः किं, ततः किं,ततः किम् ॥
षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं, सुपद्यं करोति ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे, ततः किं,ततः किं, ततः किं,ततः किम् ॥' [२]

भारत में प्राचीन काल से अनेक पंथ एवं संप्रदायों का उद्‌गम हुआ, उनमें से विख्यात एवं लोकप्रिय है- नाथ संप्रदाय।

नाथ संप्रदाय ने सम्पूर्ण जगत् को योग क्रियाओं के साथ, सामाजिक समभाव आदि अनेक शिक्षा और उपदेश दिए हैं। नौ नाथों में अपने गुरु के प्रति भक्ति, लगाव, समर्पण तथा निष्ठा लाक्षणिक है। इसीलिए नाथ संप्रदाय की अनेक विशेषताओं में प्रमुख है- असीम गुरु भक्ति।

एक जगह पर न रहते हुए समाज कल्याण के लिए अखंड तीर्थाटन करना यह नियम

---

*पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, छत्रपति संभाजीनगर, महाराष्ट्र

होने के कारण भूटान, तिब्बत, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान आदि देशों में नाथ संप्रदाय का व्यापक प्रचार-प्रसार है। उसी तरह भारत में भी सभी प्रांतों में नाथों से जुडी कथाएँ हम सुनते हैं। अनेक प्रादेशिक भाषाओं में नाथों के चरित्र आज उपलब्ध हैं।

श्री गोरक्षनाथ रचित 'किमयागार' ग्रंथ को आधार मानकर धुंडिसुत मालु नरहरी ने मराठी प्राकृत में, **'नवनाथ भक्तिसार'** ग्रंथ की रचना की। सन १८१९ को यह ग्रंथ लिखकर पूर्ण हुआ है।

नवनाथों की कथाएँ हमें भक्ति, वैराग्य और अध्यात्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती हैं। इस ग्रंथ के माध्यम से लोगों को धार्मिक और नैतिक मूल्यों की शिक्षा देने का काम हुआ है। नवनाथों का संक्षिप्त जीवन चरित, उनका समाज कल्याण के लिए अथक परिश्रम एवं कष्टों का वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है। नवनाथों की कहानियाँ और उनकी शिक्षा महाराष्ट्र की धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा हैं। इस ग्रंथ के माध्यम से इस परंपरा और संस्कृति को भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित करने का प्रयास किया गया है। संक्षेप में कहें तो नवनाथ भक्तिसार ग्रंथ की रचना नवनाथ के अलौकिक चरित्रों का वर्णन करने तथा भक्ति, अध्यात्म और नाथ संप्रदाय का प्रचार-प्रसार करने के साथ-साथ लोगों का मार्गदर्शन और कल्याण करने के उद्देश्य से की गई थी।

नवनाथ भक्तिसार ग्रंथ में गुरु का महत्त्व अत्यंत श्रेष्ठ बताया गया है। यह ग्रंथ नवनाथों के जीवन चरित्र और उनके चमत्कारों का वर्णन करता है, और इन कथाओं के माध्यम से गुरु की महिमा और आवश्यकता को स्थापित करता है। जीवन पथ पर चलते हुए अनेक बाधाएँ और चुनौतियाँ आती हैं। आध्यात्मिक मार्ग पर ये बाधाएँ और भी सूक्ष्म और जटिल हो सकती हैं। नवनाथ भक्तिसार की कहानियाँ दर्शाती हैं कि कैसे गुरु अपने शिष्यों को इन बाधाओं से बचाते हैं, सही मार्गदर्शन देते हैं और उनका संरक्षण करते हैं। नवनाथ भक्तिसार में शिष्यों की गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा, भक्ति और समर्पण का वर्णन है। यह दर्शाता है कि गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिए शिष्य का समर्पण भाव अत्यंत आवश्यक है। गुरु की आज्ञा का पालन करना और उन पर पूर्ण विश्वास रखना भक्ति मार्ग में सफलता की कुंजी है।

महाराष्ट्र में भी नाथ संप्रदाय का विस्तार बृहद् है। नौ नाथों में से अधिकतर नाथों की संजीवन समाधियाँ महाराष्ट्र में स्थित हैं, महाराष्ट्र के लिए बडे ही गौरव

की बात है। धुंडिसुत मालु कवि रचित **'श्री नवनाथ भक्तिसार'** ग्रंथ महाराष्ट्र के अधिकांश घरों में पूजा तथा भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा लिखित 'किमयागार' ग्रंथ को आधार मानकर यह ग्रंथ लिखा गया, जिसमें नाथों के चरित्र , उनका समाज के लिए किया गया कार्य, उनका सामर्थ्य आदि घटनाओं का उल्लेख है। इन सबके साथ हमें सबसे अधिक आकर्षित करती है, नाथों की समर्पित गुरु भक्ति। नौ नाथ नवनारायणों के अवतार थे किंतु मनुष्य रूप धारण करने से उन्हें अनेक मनुष्य धर्म या नियमों का पालन करना पडा। नाथों को गुरु की भक्ति तो अवश्य थी किंतु कभी-कभी उन्हें अपने गुरु का वियोग सहना पडा है, जिसका वर्णन नवनाथ भक्तिसार में बडे ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

सभी नाथ अवतारी पुरुष, कठिन से कठिन साधना करने वाले सिध्द महापुरुष थे। वे इस नश्वर संसार के प्रति तनिक भी आसक्ति नहीं रखते थे, उनके बल एवं सामर्थ्य के बारे में माँ सरस्वती की वाणी अधूरी सी प्रतीत होती है। वे ऐसे बलशाली थे किंतु यही नाथ अपने गुरु का वियोग सह नहीं पाते थे।

मच्छिंद्रनाथ जब अपना घर छोडकर बद्रिकाश्रम में १२ वर्षों तक तपश्चर्या करते हैं और उसके पश्चात् जब श्री दत्तात्रेय उनके सामने आते हैं तो मच्छिंद्रनाथ कहते हैं,

'येरु म्हणे वरदोस्तु । कामना वरी एक भगवंतु ।
ऐसें वदता झाला अतीतु । पदावरी लोटला ॥ '[३]

वे आगे कहते हैं,

'तेणें झाले पादक्षालन । पुढती बोले करी रुदन। हे महाराजा तुं भगवान । महीमाजी मिरविशी ॥
रुद्र विष्णु विरिंची सद्य । त्रिवर्गरुपी देह ऐक्यमय। ऐसें असोनि सर्वमय । साक्षी महीं अससी तू ॥
तरी येऊनि सर्वज्ञमूर्ती। असोनि माझा विसर चित्तीं।पडलासे किमर्थ अर्थी।अपराध गळी सेवोनियां ॥
ऐसें म्हणोनि वारंवार । ग्लानींत करी नमस्कार । क्लेशनगींचे चक्षुव्दार। सरितालोट लोटवी ॥'[४]

आगे जब रेवणनाथ जी श्री दत्तात्रेय की राह देखते हुए तपश्चर्या करने लगते हैं, उनके सहयोग के लिए मच्छिंद्रनाथ श्री दत्तात्रेय से जी से कृपा आशीर्वाद माँगते हुए बडे ही प्रेम से कहते हैं-

'ऐसी चाल सहजस्थित । गुरुची असे कृपा मूर्त । तरी रेवणनाथ देह आहुत कष्टानळी न सांडावी ॥
पहा जीवनें केली लावणी । सुखा आणिले थोरपणी । ते शुष्क केलिया मोहेंकरुनी । बुडवुं न शके जीवन तें ॥
त्याचि नीतीं पीयुषाभास । सेविल्या ओपी संजीवनपणास । ते कोपल्या मृत्युपदास । पाठवील की महाराजा ॥
तरी त्या पीयुष रसाच्या गावी। स्वप्नामाजी मृत्यु नाही । तैसे तुमच्या ह्रद्यीं । औदार्य बहु वसतसे ॥' [५]

इसी के साथ वटसिद्ध नागनाथ से जब मच्छिंद्रनाथ का युध्द होता है तब नागनाथ सभी देवों के अस्त्र-शस्त्र को बंधन कर देते है, जब मच्छिंद्रनाथ को अनेक जहरीले साँप डस लेते हैं और बंधन होने की वजह से गरुड़ास्त्र सफल नहीं होता उस समय श्री दत्तात्रेय को पुकारते हैं,

'मी बाळक लडिवाळ जाण । वेष्टलों असे सर्पबंधने । तरी माये तुजवांचुन । कोण सोडवील मज आता ॥
हे त्रयदेव अवतार खाणी । मज पाडसाची तु हरिणी । व्याघ्र बैसला मम प्राणहरणी ये धावोन लगबगें ॥
परम संकटी पडलो येथें । कैसी निद्रा लागली तुते । सर्वसाक्षी असोनि जगाते । नेत्र झांकिले मजविषयी ॥
दत्त दत्त ऐसे म्हणोन । शब्द फोडिला अट्टहासें करुन । नेत्र झाले श्वेतवर्ण । मुखी हुंदका येतसे ॥' [६]

श्री दत्तात्रेय मच्छिंद्रनाथ जी के गुरु रहे हैं। मच्छिंद्रनाथ निःसंदेह सर्व शक्तिमान थे फिर भी विनय इतना था कि नन्हें से बालक की तरह अपने गुरु के मोह के बंधन में बंधे हुए थे।

श्री गोरक्षनाथ जी को तो हम 'गुरु गोरक्षनाथ' के नाम से जानते हैं किंतु वे स्वयं अपने गुरु प्रति सर्वस्व समर्पित थे। अपने गुरू की इच्छा के लिए स्वयं के कष्टों की ओर भी अनदेखा कर दिया। एक बार मच्छिंद्रनाथ ने गोरक्षनाथ को भिक्षा के लिए भेजा था। गोरक्षनाथ जो भिक्षा लेकर आए उसमें से मच्छिंद्रनाथ को 'दही वड़ा' बहुत पसंद आया, वही वड़ा लाने के लिए गोरक्षनाथ ने उस घर की स्त्री के कहने पर अपना चक्षु तक निकालकर दिया था।

जब मच्छिंद्रनाथ स्त्री राज्य में गए थे। उन्होंने गोरक्षनाथ को श्री महादेव के सान्निध्य

में बिठाकर स्त्री राज्य में जाना पडा । १२ वर्ष के पश्चात् जब गोरक्षनाथ अपने गुरु को खोजने लगे थे, उस समय उनकी अवस्था उस मछली की तरह थी जो पानी से बाहर है। एक जगह पर कहते हैं–

'मी सांडुनि पूर्ण तपास। लागावया करीन येईन धांवत। म्हणुनि पालटले स्वनामास । गावांमाजी मिरवला ॥

ऐसी कल्पना आणुनि मनी। अश्रुधारा वाहती नयनीं। म्हणे महाराजा गेलासी सोडुनी । मज पाडसा कैसा रे॥

टाकुनि निर्वाण काननांत । कोठें गेला माझा नाथ । मी अर्भक अज्ञान बाळक । बहुत मोकलिलें कैसें मज ॥

हे नाथ तुं सकळमय । सर्वस्वी बापमाय । तुजविण मातें कोण आश्रय । तिन्हीं लोकी दिसेना ॥

अहा मज पाडसाची येरणी । चरुं गेली कोणें रानीं । माझे स्मरण विसरली । कैसी गुंतली तिकडेचि ॥

अहा माझी मोहाची माय । करुं गेली अंतराय । मज ते विसरुनि सह्यद्रर्द्य । कैसी गुंतली तिकडेचि ॥

ऐसे बोलुनि विलाप करीत ऊर्ध्व हंबरडा मारुनि धांवत। पोट कवळुनि श्वास सोडीत। अहा नाथ म्हणुनी ।' [७]

आगे जब गोरक्षनाथ स्वयं स्त्री राज्य में जाते हैं, मच्छिंद्रनाथ से मिलते हैं, गुरु के प्रति अपनी भावनाएँ उन्हीं के सामने प्रकट करते है,

'ऐसें बोलता मात । मग बोलता झाला गोरक्षनाथ । हे महाराजा माझी ऐकें मात । तुतें सुत बहु असती ॥

जया देशीं कराल गमन । तेथेचि सूत कराल निर्माण । मग तुमच्या मोहाचें आवरण । वांटले जाय महाराजा ॥

परी एकचि तूं माझी आई । मन माझे एकचि ठायीं । मग जैसी पहा गती पाहीं । जळाविण मीनातें ॥

कीं अर्का कुमुदिनी असती अपार । तो मोह करील कोणावर । परी कुमुदा तो एकचि मित्र । सुखापरी आणाया ॥

की चंद्रा चकोर असती बहुत । परी चकोरा एकचि रोहिणीनाथ । त्याचि न्यायें जननी जनक । अससी एकेचि माते तूं ॥

जळांत असती बहुत जळचर । परी जळचरा असतें एकचि नीर । तन्यायें मज

माहेर । एकचि मच्छिंद्र आराधिला ॥

श्लाघ्य पुरुषा अन्य युवती । परी युवतीसी एकचि पती । तन्यायें कृपामूर्ती । माझे जीवन तूं अससी ॥

घनासी असती अपार चातक । परी चातकासी घन तो एक । तेवीं तूं माते जननीजनक । एकचि अससी महाराजा ॥ ' [८]

ऐसी वाणी सुनकर मच्छिंद्रनाथ भी गोरक्षनाथ की ही तरह भावुक हो गए और माता अपने बालक जैसे सहलाती है ठीक उसी तरह प्रेम से सहलाया।

मच्छिंद्रनाथ जी ने जनता को सुखी करने के लिए त्रिविक्रम राजा के मृत शरीर में प्रवेश करते हैं। मच्छिंद्रनाथ और गोरक्षनाथ ने आपस में मिलकर त्रिविक्रम राजा के शरीर में १२ वर्ष रहने के निर्णय का संकल्प किया था। गांव के एक शिवालय के गुफा में मच्छिंद्रनाथ का कलेवर रखा गया था। मच्छिंद्रनाथ का शरीर गुफा में रखकर गोरक्षनाथ तीर्थाटन को निकल जाते हैं।

यह सारी सच्चाई रानी रेवती को ज्ञात होती है, तब वह अपने स्वार्थ के लिए मच्छिंद्रनाथ के शरीर को भंग करती है। मच्छिंद्रनाथ के शरीर को श्री महादेव कैलास पर्वत पर लाने का आदेश देते हैं। १२ वर्ष के पश्चात् मच्छिंद्रनाथ का शरीर गुफा में पाकर वे कहते हैं–

'तवं तो म्हणे महाराजा प्रज्ञावंता । सोडुनि दिधली माझी ममता । आतां येथें गुरुनाथा । कवणें ठायीं पाहूं मी ॥' [९]

१२ वर्ष के तप के पश्चात् गोरक्षनाथ मच्छिंद्रनाथ को खोजते हुए अनेक स्थान पर घूमते हैं, उसी समय एक जगह पर श्री कानिफनाथ उन्हें मिलते हैं जो मच्छिंद्रनाथ का पता बताते हैं। जब गोरक्षनाथ और मच्छिंद्रनाथ स्त्री राज्य से निकलकर पुन: उसी स्थान पर आते हैं, उस समय गोरक्षनाथ को याद आती है, **' मैं गुरु के वियोग में था और इसी जगह पर मुझे मेरे गुरु के बारे में पता चला इसलिए वह स्थान पुण्यपावन मानते हैं। '**

यह सोचते हुए उनकी आँखे भर आती हैं, इसका कारण पूछने पर गोरक्षनाथ बताते हैं–

'याचि ठायीं कानिफा भेटी । झाली मातें कृपा जेठी । तुमची शुध्दी तद्वाग्वटी । येथेंचि लाधली महाराजा ॥

तरी हें स्थान पुण्यवान । तुमचे दाविले मज चरण । तरी हे स्थान धनवंत पूर्ण । चुकलें धन मज दिधलें ॥

दुः खसरिते प्रवाहे वेष्टी । बुडतां वांचविले देऊनि पृष्ठी । कीं दुःख व्याघ्राच्या आसडुनि होटी । माये भेटी केली असे ॥

कीं तुमचा वियोग प्रळयानळ । तयांत मी पडलो होतो बाळ । परी जागा नोहे हा घन शीतळ । मातें झाला महाराजा ॥

कीं तुमचा वियोग कृतांतपाश । लागला होता मम कंठास । परी जागा नोहे हा सुधारस। मज भेटला महाराजा ॥' [१०]

१७ वें अध्याय में कानिफनाथ के गुरु जालिंदरनाथ का वर्णन आया है। गोपीचंदनाथ अपनी रानियों के बहकावे में आकर जालिंदरनाथ को धरती के अंदर डाल देते हैं और यह बात किसी को पता नहीं होती। गोरक्षनाथ यह सच्चाई कानिफनाथ को बताते हैं। गोपीचंद राजा को लेकर कानिफनाथ जब उस स्थान पर पहुंचते हैं, उस समय कहते हैं, **'म्हणे महाराजा तपोजेठी । मी बाळक कानिफा महीपाठी । पहावया चरण दृष्टीं । बहुत भुकेले चक्षु तें ॥ ' [११]**

श्री वटसिध्द नागनाथ श्री दत्तात्रेय महाराज से मिलने के लिए व्याकुल होते हैं। उनकी भेंट होने के लिए नागनाथ हर संभव प्रयास करते हैं, दत्तात्रेय नागनाथ से मिलते हैं तब वे कहते हैं–

'म्हणे महाराजा योगपती । माय तूं माऊली द्याळ क्षितीं । तरी डावलुनि पाडसाप्रती । गुप्त कैसा विचरसी ॥

मज करुनियां निढळवान । दैन्यवंत बहुत काननीं । तेथे सांडुनि निष्ठुरपणीं । जासी कैसा वो माये ॥

मज बाळपणीं आपुले चोज । दावुनियां तपोभोज । गेलासि टाकुनि महाराजा । मागें दृष्टि न करितां ॥

तरी मी सखया तुजवांचुनी । पडलो आहे घोर वनीं । मार्ग लक्षितां सूक्ष्म नयनीं । प्राण कंठी उरला असे ॥

जैसा चातक दृष्टीकरुन । वाट पाहे अंबुद सघन । कीं उखली हरिणीलागून । वाट पाहे पाडस ॥

वीस संवत्सर गेला काळ । परी चिंतावन्ही दाही तळमळ । तैं शांत करावया जळ । तुझे कांही दिसेना ॥

आपवेगळी आपमासोळी । तेवीं तव भेटी जीव तळमळी । परी माये त्वां ह्रद्यगतकमळी । निष्ठूर कैसे सांठविले॥ '[१२]

मराठी 'श्री नवनाथ भक्तिसार' में नौ नाथों के गुरु के वियोग का वर्णन

उल्लिखित है। ग्रंथ पढ़ते समय जब यह विरह वर्णन आता है तो पाठक भी भावविह्वल हो जाता है।

नाथों की गुरु भक्ति या गुरु के वियोग में उनकी अवस्था को पढ़कर उनके प्रति आदर-सम्मान एवं श्रध्दा का भाव और भी बढ़ जाता है।

नाथ संप्रदाय द्वारा स्थापित गुरु-निष्ठा की यह परंपरा कालांतर में भारतीय संत साहित्य का आधार बनी। नाथों के बाद आने वाले संतों, जैसे कबीर, तुलसी और ज्ञानेश्वर की वाणी में भी उसी गुरु-महिमा की गूँज सुनाई देती है, जिसका बीजारोपण नवनाथों ने किया था। कबीर का गुरु को गोविंद से ऊँचा मानना हो या ज्ञानेश्वर महाराज का अपने गुरु निवृत्तिनाथ के प्रति समर्पण, इन सब की मूल प्रेरणा नवनाथों की वह अटूट आस्था ही है, जिसका मार्मिक चित्रण 'नवनाथ भक्तिसार' में मिलता है।

भारत के प्रत्येक भाषा में श्रृंगार वर्णन आया है वह चाहे संयोग का या वियोग का हो। साहित्य एवं सिनेमा में विरह गीत भरे पड़े हैं - जो प्रेमी का वियोग, मित्र का, परिवार के सदस्य, पालतू जानवर आदि का है। किंतु इन विरह वर्णनों से कई गुना ज्यादा बढ़कर है नाथों के गुरु का वियोग वर्णन । साथ ही एक सामान्य मनुष्य अशाश्वत या मिथ्या बातों को लेकर वियोग सहता है किंतु नाथों के चरित्र में गुरु का ही वियोग मिलता है और गुरु यह सृष्टि का शाश्वत तत्त्व है। जो गुरु अपने शिष्यों से प्राणों से भी अधिक स्नेह रखते है।

यही गुरु की महानता की विशेषता हमें परवर्ती रचनाकारों के साहित्य में मिलती है। जिसकी मूल प्रेरणा नाथ संप्रदाय ही रहा है। नाथों के चरित्र, उनकी शिक्षा आदि आदर्श हमें मिलते हैं। नाथों के चरित्र की छोटी से छोटी बात प्रत्येक युग में प्रासंगिक ही जान पडती है।

वर्तमान स्थितियों में विद्यार्थी पाठशाला-महाविद्यालय-विश्वविद्यालय के अपने अध्यापकों को उपरी तौर पर सम्मान देते हैं किंतु जीवनावश्यक सभी आवश्यकताओं के साथ गुरु के मार्गदर्शन-प्रेरणा की हमें हर कदम पर जरुरी है, तभी हम मनुष्य हमारी इस जीवन की नैया को पार लगा पाएँगे।

■

प्रश्नोपनिषद् में प्राण विद्या

*डॉ संगीता कुमारी

उपनिषद् क्या है? उपनिषद् शब्द क्रिया मूल सद् की व्युत्पत्ति है जिसके अनेक अर्थ हैं: ढीला होना, गति और नाश। इन तीनों भावों को एक साथ रखने पर 'उपनिषद्' शब्द उस दिव्य ज्ञान को संदर्भित करता है जिसमें एक व्यक्ति के सांसारिक बंधनों का ढीला होना, उसके अज्ञान का नाश होना जो कि उसे ईश्वर या ब्रह्म की ओर ले जाता है। पुस्तक या धर्म ग्रंथों संबंधित कार्य, जो कि इस तरह के ज्ञान की शिक्षा देता है, को भी उपनिषद् कहते हैं। 'भक्ति भाव से निकट बैठना' भी उपनिषद् शब्द का एक अर्थ है।

आज के समय में 'उपनिषद्' नाम से दो सौ से अधिक प्रिंट उपलब्ध हैं। मुक्तिकोपनिषद् में एक सौ आठ उपनिषदों की सूची मिलती है। इनमें से दस से पंद्रह उपनिषदों को पुरातन माना जाता है। ये प्राचीन हिन्दू दर्शन के मौलिक स्रोत हैं। प्रश्नोपनिषद् इनमें से एक मुख्य उपनिषद् है। यह अथर्ववेद के पिप्पलाद शास्त्रीय ब्राह्मण भाग के अंतर्गत है। इस उपनिषद् में महर्षि पिप्पलाद ने सुकेशा, सत्यकाम आदि छः ऋषियों के छः प्रश्नों के क्रम से उत्तर दिया है, इसलिए इसका नाम प्रश्नोपनिषद् पड़ा। इसमें सृष्टि, प्राण (जीवन ऊर्जा), मन और ॐकार के विषय में वर्णन मिलता है। यह मुख्य रूप से प्राण विद्या और ब्रह्म ज्ञान पर प्रकाश डालता है। इनका मूल सिद्धांत है कि व्यक्तिगत प्राण, सार्वभौमिक प्राण (ब्रह्माण्डीय ऊर्जा) का ही अंश है। प्रश्नोपनिषद् में प्राण विद्या (जीवन ऊर्जा का विज्ञान) को सर्वोच्च माना है जिसमें प्राण को शरीर, इंद्रियां और मन को धारण करने वाली परम शक्ति व सृष्टि का आधार बताया है। ऋषि पिप्पलाद ने प्राण को ब्रह्म की अभिव्यक्ति कहा है, जो पांच भागों - प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान में विभक्त होकर शरीर का संचालन करता है।

ऋषि पिप्पलाद कहते हैं कि संपूर्ण जीवों के स्वामी परमेश्वर को सृष्टि के आदि में जब प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा हुई, तब उन्होंने संकल्प रूप तप के द्वारा सर्वप्रथम रयि और प्राण - इन दोनों का एक जोड़ा उत्पन्न किया। उसे उत्पन्न करने का उद्देश्य यह था कि ये दोनों मिलकर मेरे लिए नाना प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करेंगे। सबको जीवन प्रदान करने वाली समष्टि जीवनी शक्ति, चेतना स्वरूप ही प्राण है। इस

---

*पूर्व सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) आगरा

जीवनी शक्ति से ही प्रकृति के स्थूल स्वरूप - समस्त पदार्थों में जीवन, स्थिति और यथायोग्य सामञ्जस्य आता है एवं स्थूल भूत समुदाय का नाम 'रयि' है, रयि शक्ति और आकृति है। इन्हीं को अन्यत्र अग्नि और सोम के नाम से भी कहा गया है। प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला सूर्य प्राण है, क्योंकि इसमें सबको जीवन प्रदान करने वाली चेतना शक्ति की प्रधानता और अधिकता है। इसी प्रकार यह चंद्रमा रयि है, क्योंकि इसमें स्थूल तत्त्वों को पुष्ट करने वाली भूत तन्मात्राओं की ही अधिकता है। मांस, मेद आदि स्थूल तत्त्वों का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। वैश्वानर नाम से कही जाने वाली जठराग्नि सूर्य का ही अंश है, जिससे अन्न का पाचन होता है।

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते।

प्रश्न -७

वेद का आधार भी प्राण ही है। प्राण ही प्रजापति (प्राणियों का ईश्वर), देवताओं के लिए हवि पहुंचाने वाला उत्तम अग्नि, पितरों के लिए पहली स्वधा, अथर्वाङ्गिरस आदि ऋषियों के द्वारा अनुभूत सत्य है। वही इन्द्र, रुद्र, वायु तथा समस्त ज्योतिर्गणों का स्वामी सूर्य है।

चक्रवर्ती सम्राट् के द्वारा ग्राम, मण्डल, जनपद आदि में विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति की भांति यह प्राण भी अपने अंग स्वरूप अपान, व्यान आदि को भी शरीर में पृथक्-पृथक् स्थानों में कर्म के लिए नियुक्त करता है।

यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते॥ (प्रश्न ३.४)

वह स्वयं मुख, नासिका, नेत्र और श्रोत्र में विद्यमान रहता है। गुदा व उपस्थ में अपान को स्थापित करता है, जिसका कार्य है - मल-मूत्र, रज, वीर्य और गर्भ को बाहर निकालना। शरीर के मध्य भाग नाभि में समान को रखता है। यह उदर में डाले गए अन्न को समान भाव से पूरे शरीर में पंहुचाता है। उस अन्न के सारभूत रस से ही इस शरीर में सात ज्वालाएं अर्थात् समस्त विषयों को प्रकाशित करने वाले दो नेत्र, दो कान, दो नासिकाएं और एक मुख (रसना)-ये सात द्वार उत्पन्न होते हैं। उसी रस से पुष्ट होकर ये अपना-अपना काम करने में समर्थ होते हैं।

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति॥

(प्रश्न २.१३)

अर्थात् पृथिवी, द्यौ, तथा अन्तरिक्ष इन तीन लोकों में जो कुछ भी है, वह

सब प्राण के वश में है। हे प्राण! जैसे माता स्नेहभाव से पुत्रों की रक्षा करती है, ऐसे ही तू हमारी रक्षा कर। हमें श्री (भौतिक सम्पदा) तथा प्रज्ञा (मानसिक एवं आत्मिक ऐश्वर्य) प्रदान कर।

इस शरीर में हृदय के स्थान को जीवात्मा का निवास स्थान माना जाता है, उसमें एक सौ मूल भूत नाड़ियां हैं जिससे हमारे शरीर में कुल ७२,००० करोड़ नाड़ियां निकलती हैं। इन सबमें व्यान वायु विचरण करता है। इन नाड़ियों से भिन्न एक सुषुम्ना है, जो मूलाधार चक्र से निकल कर हृदय से होती हुई ऊपर मस्तक में सहस्रार चक्र तक जाती है जिसे ब्रह्म रंध्र भी कहते हैं, जिसके द्वारा उदान वायु शरीर में ऊपर की ओर विचरण करता है। पुण्य शील व्यक्ति, जिनके शुभ कर्मों के भोग उदय हो जाते हैं, उसे यह उदान वायु ही प्राण, इंद्रिय सहित समस्त शरीर से निकालकर उच्च लोक में ले जाती है।

(प्रश्न ३.४,५,६,७)

इस प्रकार प्राण स्थिति के इस आधिभौतिक और आध्यात्मिक पांचों भेदों के रहस्य को भली-भांति समझ लेने वाला मनुष्य अमृत स्वरूप परमानन्द मय परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है। (प्रश्न ३.१२)

भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता के अध्याय आठ के बारहवें और तेरहवें श्लोक में अत्यंत स्पष्ट रूप से कहा है कि -

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

अर्थात् - सब इंद्रियों के द्वारों को रोककर तथा मन को हृद्देश में स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मन के द्वारा प्राण को मस्तक में स्थापित करके, परमात्मा सम्बन्धी योग धारणा में स्थित होकर जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिंतन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। (अथर्ववेद ११.४.१)

अर्थात् - मैं प्राण को प्रणाम करता हूं, इस प्राण के ही वश में है यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड।

■

पिबत भागवतं रसमालयम्

*प्रो.हरिप्रसाद अधिकारी

निगमकल्पतरोर्गलितं फलम् शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्-वेदादि शास्त्र उस कल्पवृक्ष के समान हैं जो जीव की लौकिक और पारलौकिक समस्त कामनाओं की पूर्ति करने में समर्थ हैं। किंतु, जिस प्रकार एक वृक्ष की सार्थकता उसके पुष्पों या पल्लवों में नहीं, अपितु उसके पूर्णतः पके हुए मधुर फल में निहित होती है, उसी प्रकार समस्त वेदों, उपनिषदों और पुराणों का सारभूत निष्कर्ष श्रीमद्‌भागवत है। यह ग्रंथ शुष्क ज्ञान की विवेचना मात्र नहीं, अपितु भक्ति रस से आप्लावित वह 'गलित फल' है जो साधक के हृदय में ईश्वरीय प्रेम का संचार करता है। शुकदेव रूपी शुक के मुख का स्पर्श पाकर यह अमृतमयी रस और भी विलक्षण हो गया है, क्योंकि जब कोई आत्मज्ञानी महापुरुष अपनी अनुभूतियों को शब्दों में पिरोता है, तो वह ज्ञान केवल सूचना न रहकर जीवंत साक्षात्कार बन जाता है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो आज के आपाधापी पूर्ण और मानसिक द्वंद्वों से भरे जीवन में भागवत का 'रस-पान' एक अनिवार्य औषधि है। 'पिबत भागवतं रसालयम्' का आह्वान हमें केवल पठन-पाठन तक सीमित रहने का निर्देश नहीं देता, अपितु इसके सिद्धांतों को जीवन में आत्मसात (Internalize) करने की प्रेरणा देता है। इसका व्यावहारिक महत्त्व निम्नलिखित बिंदुओं में समाहित है:

1. भावात्मक संतुलन - भागवत हमें सिखाता है कि संसार के अनित्य सुख-दुखों के मध्य अविचलित रहकर किस प्रकार अपनी चेतना को उस 'परम रस' से जोड़ा जाए, जिससे मानसिक शांति की प्राप्ति होती है।

2. शरणागति और तनाव मुक्तिः 'अमृतद्रवसंयुतम्' होने के कारण यह ग्रंथ मनुष्य को अहंकार त्यागकर ईश्वर के प्रति समर्पण करना सिखाता है, जो आधुनिक युग के तनाव और अवसाद का सबसे प्रभावी निराकरण है।

3. विवेकपूर्ण जीवनः यह ग्रंथ जीवन की नश्वरता का बोध कराते हुए हमें 'अत्यावश्यक' और 'निरर्थक' के बीच भेद करना सिखाता है, जिससे हमारी निर्णय क्षमता और जीवन की दिशा स्पष्ट होती है।

4. सामुदायिक समरसताः मुनियों के हृदय को आह्लादित करने वाला यह रस अंततः व्यक्ति को संकुचित स्वार्थ से ऊपर उठाकर समस्त सृष्टि में भगवद्दर्शन

*पूर्वाचार्य, तुलनात्मकधर्मदर्शनविभाग, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी

करने की दृष्टि प्रदान करता है।

अतः, भागवत का अनुशीलन केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं, अपितु जीवन जीने की एक रसपूर्ण कला है। यह हमें सिखाता है कि संसार की प्रतिकूलताओं के मध्य भी कैसे अंतर्मन में भक्ति का अमृत संजोए रखा जा सकता है।

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय की आधारशिला 'जिज्ञासा' है– 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' (ब्रह्मसूत्र १.१.१)। किंतु जिज्ञासा मात्र से ब्रह्म का तटस्थ ज्ञान संभव है, आस्वादन नहीं। श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वारा इस बौद्धिक जिज्ञासा का रूपान्तरण 'ज्ञानपिपासा' के रूप में कर दिया गया है। जहाँ उपनिषद् सत्य को 'रसो वै सः' (तैत्तिरीयोपनिषद् २.७.१) कहकर केवल उसकी संदेहात्मक उपस्थिति दर्ज करते हैं, वहाँ भागवत उस सत्य को 'पेय' के रूप में साक्षात् आस्वादन का निमंत्रण देता है। इस आलेख के माध्यम से वेदों के उस 'परिपक्व फल' का दार्शनिक अन्वेषण किया गया है, जिसने ज्ञान को शुष्कता से मुक्त कर माधुर्य प्रदान किया।

१. 'निगम-कल्पतरु' एवं साध्य-साधन मीमांसा

श्रीमद्भागवत के मंगलाचरण (१.१.३) में प्रयुक्त 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' पद अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दार्शनिक धरातल पर वेद (निगम) वह वृक्ष है जिसमें ज्ञान, कर्म और उपासना की विविध शाखाएं हैं।

1. फलत्व की अनिवार्यता: फल ही वृक्ष का अंतिम 'साध्य' है। भागवत को 'गलित फल' (स्वतः परिपक्व होकर गिरा हुआ फल) कहना यह सिद्ध करता है कि यह वेदों का कोई कृत्रिम निष्कर्ष नहीं, अपितु उनका नैसर्गिक सार है। इसमें 'त्वक' (छिलका) और 'अस्थि' (गुठली) जैसे त्याज्य अंशों का अभाव है; यह केवल अमृत-द्रव है।

2. निर्गन्ध से सविशेष का प्रस्थान: जिस प्रकार फल में वृक्ष के समस्त गुण रस रूप में संकेंद्रित होते हैं, वैसे ही उपनिषदों का निराकार 'रस-ब्रह्म' भागवत के कलेवर में 'सविशेष माधुर्य' बनकर अभिव्यक्त हुआ है।

२. 'शुक-मुख' एवं संचरण की ज्ञानमीमांसा

श्लोक का द्वितीय चरण 'शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्' सम्प्रेषण की शुचिता को रेखांकित करता है।

1. सिद्ध-वाणी का पारस: शुकदेव जी जैसे 'पूर्ण वीतराग' मुनि के मुख से निःसृत होने के कारण यह कथा 'अमृत' से 'अमृत-द्रव' बन गई है।

2. द्रवीकरण का सिद्धांत: दर्शनशास्त्र के अनुसार, ज्ञान जब शुष्क होता है तो वह केवल बुद्धि को तृप्त करता है, किंतु जब वह 'द्रव' बनता है तो हृदय को

विगलित करता है। भागवत का रस वह तरल तत्त्व है जो चित्त की पाषाणवत कठोरता को समाप्त कर भक्ति का संचार करता है।

३. 'रसमालयम्': भक्ति-रस का पारमार्थिक अधिष्ठान

'रसमालयम्' शब्द इस आलेख का केंद्रीय स्तंभ है। श्री रूप गोस्वामी कृत 'भक्तिरसामृतसिन्धु' के परिप्रेक्ष्य में इसके दो विशिष्ट दार्शनिक पक्ष हैं:

1. लय-पर्यन्त अनुशीलन: यहाँ 'आलय' का तात्पर्य 'लय' या पूर्ण तन्मयता से है। जब तक जीव ब्रह्म-रस में पूर्णतः आत्मसात न हो जाए, तब तक इसका अनुपान विहित है।

2. रसों का महासमुच्चय: भागवत वह 'आलय' (निकेतन) है जहाँ शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और उज्ज्वल (शृंगार) जैसे रसों का चरम परिपाक प्राप्त होता है।

''अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
अनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।''

४. 'पिबत' एवं 'मुहुरहो': तृप्ति में अतृप्ति का दर्शन

लेख का मुख्य विमर्श बिंदु 'पिबत' क्रिया है। यह उपनिषदों के 'ज्ञेय' को 'पेय' में परिवर्तित करने की घोषणा है।

1. अतार्किक अनुभूति: यहाँ सत्य तर्क का विषय नहीं, अपितु आस्वादन का विषय है। रसिक और भावुक जन ही इसके वास्तविक अधिकारी हैं।

2. निरंतरता: लौकिक रस की परिणति तृप्ति के पश्चात् अरुचिकर विरक्ति में होती है, किंतु भागवत-रस 'प्रतिक्षण-वर्धमान' है। इसीलिए यहाँ 'मुहुरहो' (बार-बार) पान करने का निर्देश है, जो मोक्ष की कामना को भी विस्मृत कर देता है।

५. निष्कर्ष एवं 'पंचम पुरुषार्थ' की प्रतिष्ठा

परमात्मा केवल चिंतन की वस्तु नहीं, अपितु 'परम आस्वाद्य रस' हैं। अंततः यह ग्रंथ स्वयं को समस्त ज्ञान के चरम फल के रूप में सिद्ध करता है:

'सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित्।।' (१२.१३.१५)

यह दर्शन मुमुक्षु को रसिक में परिष्कृत करता है और 'प्रेम' को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष से ऊपर 'पंचम पुरुषार्थ' के रूप में स्थापित करता है। भागवत का यह रस-मार्ग ही मानवता को शुष्क बौद्धिकता के कारागार से मुक्त कर 'आनंदमयी चेतना' में प्रतिष्ठित करने का एकमात्र प्रशस्त मार्ग है।

■

भगवान् परशुराम : युगों को जोड़ने वाले चिरंजीवी आचार्य

*रविभूषण द्विवेदी

भारतीय इतिहास और सनातन परंपरा में भगवान् परशुराम का चरित्र अद्वितीय और अद्भुत है। वे केवल एक ऋषि या योद्धा नहीं, बल्कि धर्म, शस्त्र और शास्त्र के समन्वय का प्रतीक हैं। उनके जीवन पर गहन अध्ययन और शोध आज समय की माँग है, ताकि समाज उनके वास्तविक स्वरूप को समझ सके।

धर्मरक्षा के लिए शस्त्र-संधान

सनातन मान बिन्दुओं की रक्षा हेतु परशुराम ने वह किया जो दुर्लभ है: ऋषि होते हुए भी अन्याय के विरुद्ध शस्त्र उठाया। उन्होंने स्पष्ट किया कि धर्म की रक्षा का दायित्व वर्ण या आश्रम से बंधा नहीं है। जब शासन आततायी हो जाए, तो तपस्वी को भी क्षत्रिय धर्म निभाना पड़ता है। यही उनका सबसे बड़ा सामाजिक संदेश है।

गुरु-परंपरा के शिल्पकार

परशुराम केवल योद्धा नहीं, युग-निर्माता आचार्य थे। उन्होंने द्रोणाचार्य जैसे युद्धशास्त्र के आचार्य को तैयार किया, जिनसे कौरव-पांडवों की पूरी पीढ़ी ने शिक्षा पायी। भीष्म, कर्ण जैसे महारथी उनके शिष्य रहे। एक अबला स्त्री अम्बा के न्याय के लिए उन्होंने अपने प्रिय शिष्य गंगापुत्र देवव्रत भीष्म से भी भीषण युद्ध किया। इससे सिद्ध होता है कि उनके लिए धर्म और न्याय, व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर थे।

अवतारों के मार्गदर्शक

परशुराम की भूमिका एक युग तक सीमित नहीं है। वे युग-संधान के सेतु हैं:

१. त्रेता युगः रामावतार के समय उन्होंने श्रीराम को शारंग धनुष प्रदान कर मर्यादा की रक्षा का दायित्व सौंपा।

२. द्वापर युगः कृष्णावतार में श्रीकृष्ण को सुदर्शन चक्र का ज्ञान दिया।

३. कलियुगः मान्यता है कि वे कल्कि अवतार के गुरु होंगे।

---

*शोधार्थी, माँ पाटेश्वरी विश्वविद्यालय, बलरामपुर

विष्णु के छठे आवेशावतार होते हुए भी वे अन्य अवतारों के सहायक बने। इसीलिए वे शिव-स्वरूप, साक्षात् नारायण और ब्रह्मतुल्य कहे जाते हैं।

छवि का संकट: विकृतिकरण की चुनौती

रामचरितमानस के अयोध्या काण्ड में उनका प्रसंग संक्षिप्त है। दुर्भाग्य से, लोक में कुछ कीर्तनिहा व्यासों द्वारा उस प्रसंग को मिर्च-मसाला लगाकर 'क्रोधी ब्राह्मण' के विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया। यह अशोभनीय है।

भगवान् जामदग्न्येय राम वास्तव में समाज को जोड़ने वाले नायक हैं। उन्होंने त्रेता को द्वापर से जोड़ा, शस्त्र को शास्त्र से जोड़ा, और तप को तेज से जोड़ा। परंतु लोक-मानस में उन्हें विघटनकारी रूप में दिखा दिया गया।

समाधान: शिक्षा और व्यापक प्रवचन

जब समाज शिक्षित होगा और महाभारत, कल्कि पुराण, परशुराम कल्पसूत्र जैसे मूल ग्रंथों का अध्ययन करेगा, तभी परशुराम जी की वास्तविक महिमा सामने आएगी।

इसके लिए तीन स्तर पर कार्य आवश्यक है:

१. शोध: विश्वविद्यालयों में परशुराम के दर्शन और योगदान पर पीठ स्थापित हों।

२. संवाद: युवाओं के बीच संगोष्ठी और कार्यशालाओं से मिथकों को तोड़ा जाए।

३. साहित्य: संतुलित और प्रामाणिक लेख, पुस्तकें, वृत्तचित्र बनाए जाएँ।

उपसंहार

भगवान् परशुराम चिरंजीवी हैं। वे केवल अतीत के चरित्र नहीं, बल्कि वर्तमान के मार्गदर्शक और भविष्य के नियंता हैं। वे क्रोध के नहीं, करुणा के प्रतीक हैं। वे तोड़ने वाले नहीं, जोड़ने वाले हैं।

आवश्यकता है कि हम उनके जीवन को खंडित दृष्टि से नहीं, समग्र दृष्टि से देखें। व्यापक प्रवचन के द्वारा ही उनका ब्रह्मतुल्य स्वरूप समाज के सामने पुनर्स्थापित हो सकेगा।

■

भारतीय ज्ञान परंपरा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण

*डॉ. राजेश कुमार त्रिपाठी

भारतीय ज्ञान परंपरा, दर्शन, आध्यात्मिकता और मानव कल्याण को एक साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ देखती है। वैदिक काल से ही भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की गहरी परंपरा रही है जो अनुभव अवलोकन और कठोर प्रयोगों पर आधारित है। भारतीय ज्ञान परंपरा शब्द उस ज्ञान पुंज को संदर्भित करता है। जिसे पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में हजारों वर्षों से अर्जित, संरक्षित और प्रसारित किया गया है। यह एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया जाता है जो गहन अध्ययन तथा अनुभवों के माध्यम से विकसित हुई है तथा जिसकी छत्र-छाया में विज्ञान के कई विषय फले-फूले हैं। दुनिया भर में प्राचीन भारतीयों द्वारा विज्ञान के क्षेत्र में दिए गए योगदान को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति, प्राकृतिक संसाधन व मानव जीवन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इनके संरक्षण, विकास और प्रयोग के द्वारा जीवन को सरल, सहज बनाने का प्रयास भारतीय ज्ञानियों ने किया व अपने अनुभवजन्य ज्ञान से जान लिया था कि प्राकृतिक संसाधनों का कोई विकल्प नहीं है। वैज्ञानिक तकनीकी से हम इनका रूपांतरण तो कर सकते हैं, किंतु तकनीकी आधारित किसी भी आधुनिकतम ज्ञान के बूते हम पुनर्जीवित नहीं कर सकते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रमुख मूल्य है जो साक्ष्य आधारित ज्ञान का पोषण करता है और पूर्वकल्पित धरणाओं या अंधविश्वासों को खारिज करता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के महत्त्व को सबसे पहले प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने रेखांकित किया जिससे भविष्य की चुनौतियों से निपटा जा सके। यह दृष्टिकोण आधारभूत रूप से सत्य की खोज, तर्क और विश्लेषण तथा नवोन्मेषी रूप से नागरिकों को ज्ञान आधारित समाज के निर्माण हेतु प्रेरित करता है। संविधान का अनुच्छेद ५१ए (४) वैज्ञानिक मनोवृत्ति, मानवतावाद और उत्सुकता की भावना और सुधार की बात करता है और इसे हर नागरिकों का मौलिक कर्तव्य बताया गया है। हमारा संविधान दुनिया का अकेला संविधान है, जो वैज्ञानिक मनोवृत्ति का जिक्र करता है। हमारी परंपरा वैज्ञानिक मनोवृत्ति के पोषण, संवर्धन के साथ मानव कल्याण की परंपरा है तथा यह पूर्णतः वैज्ञानिक शोधपत्रक तथा तार्किक मूल्य की प्रतिपादक है। वैज्ञानिक मनोवृत्ति या संस्कृति उच्च मानवीय मूल्यों का संरक्षण तभी कर सकती है जब यह भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ आगे बढ़े।

*अपर निदेशक, रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

भारत में वैज्ञानिक दष्टिकोण

भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का साक्ष्य वैदिक काल से मिलता है, जिसमें मानव की स्वाभाविक जिज्ञासा गणित, चिकित्सा और खगोल विज्ञान में प्राप्त होती है। ६वीं शताब्दी पूर्व न्याय सूत्र में साक्ष्य आधारित प्रेक्षण तथा तार्किक संगठन का साक्ष्य प्राप्त होता है। आर्यभट्ट और सुश्रुत के कार्य और योगदान भारतीय मनीषा की वैज्ञानिकता की पुष्टि करते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक चिंतन और पुरातन भारतीय परंपरा के अध्ययन से यह स्थिति और भी स्पष्ट होती है कि भारतीय ज्ञान परंपरा अपने प्रारंभ से वैज्ञानिक और खुली किताब रही है जिसमें समस्त विश्व को एक परिवार मानते हुए सभी प्रकार से प्राप्त ज्ञान और विचार का स्वागत करती है। प्राचीन भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण मनोवृत्ति गहरी जड़ें जमाये हुये थी जो सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर मौर्य और गुप्त काल तक फैली थी जिसमें शून्य और दशमलव की खोज (आर्यभट्ट) शल्य चिकित्सा (सुश्रुत, जीवक), खगोल (वराहमिहिर), धातु कर्म और गणित (वौधायन प्रमेय) जैसे क्षेत्रों में अद्‌भुत प्रगति देखी गई, जहां तर्क, प्रयोग और अवलोकन पर आधारित ज्ञान की परंपरा थी, जिसने उन्नत चिकित्सा इंजीनियर और खगोलीय गणना का विकास हुआ जो आज भी प्रासंगिक है तथा वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देती है। भारतीय ज्ञान परंपरा शिक्षा और वैज्ञानिक प्रवृत्ति को मनुष्य की शक्ति के विकास का मूल मानती है यह एक तरफ नवाचार, अन्वेषण तथा तथ्यों के अध्ययन को अपना पाथेय मानती है वहीं सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के साथ आदर्श जीवन की परिकल्पना को साकार करती है। वैज्ञानिक संस्कृति मूल्य की अवहेलना नहीं करती है। आधुनिक युग में प्रचलित भारतीय ज्ञान और देशों से आ रही है तथाकथित नवीन खोज जो हमारे ग्रंथो में पूर्व से ही उल्लखित है, भारतीय ज्ञान परंपरा के समृद्धशाली होने की प्रमाण है।

बीती कुछ शताब्दियों से इस भूमि को इस प्रकार महसूस कराया जाता रहा है कि यह ज्ञान कभी अंकुरित ही नहीं हुआ। भारतीय ज्ञान परंपरा को सैकड़ो वर्षों की दासता के बाद भी पूर्वजों ने संजोये रखा है। आज से ५००० वर्ष पहले जब दुनिया में अधिकतर भाग में खानाबदोश और वनवासी जीवन था तब सिंधु घाटी की सभ्यता और हड़प्पा संस्कृति वैज्ञानिक रूप में थे। विश्व का पहला विश्वविद्यालय तक्षशिला में ७०० ई. पूर्व स्थापित हुआ था। जिसमें दुनिया के १०५०० से अधिक छात्रों ने ६० से अधिक विषयों का अध्ययन किया। भारतीय ज्ञान में दर्शन और अध्यात्म की मजबूत नींव है। चरक ने २५०० साल पहले आयुर्वेद को समेकित

किया है। गणित, खगोल, धातु विज्ञान, शून्य तथा दशमलव का आविष्कार भारत में हुआ जिसका उपयोग संपूर्ण विश्व में होता है। इसरो के वैज्ञानिक डॉक्टर एस. सोमनाथ के अनुसार वैज्ञानिकी समय की अवधारणा, ब्रह्मांड की संरचना गणित, धातु विज्ञान के वैज्ञानिक सिद्धांत सबसे पहले वेदों में पाए गए। हमारी परंपरा में ज्ञान उपभोग के लिए न होकर परिष्कार के लिए है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ब्रह्म की धारणा भी बहुत वैज्ञानिक है। ज्ञान का उद्देश्य दैहिक एवं दैविक दुख से मुक्ति को ज्ञान का उद्देश्य माना जाता है। ब्रह्म की सत्ता को कण-कण में स्वीकारना ही ज्ञान का मंतव्य है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को पशुता से मुक्त श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त बनाना है। मेडिसन जो आर्थिक इतिहासकार थे उन्होंने लिखा है कि १६०० ईसवी तक भारत दुनिया का सबसे उत्पादक देश था जो वैज्ञानिक दृष्टि का सबसे बड़ा उदाहरण भास्कराचार्य ने ५वीं शताब्दी में पृथ्वी से सूर्य की परिक्रमा का समय निर्धारित किया था। पाई का मान बोधायन ने दिया था, जिससे पाइथागोरस प्रमेय का जन्म हुआ। महान वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कहा था कि भारतीयों ने दुनिया को गिनना सिखाया है। दुनिया का सबसे पहला सिंचाई का बांध सौराष्ट्र में बनाया गया था। चंद्रगुप्त मौर्य ने रेवतका की पहाड़ियों पर सुदर्शन नामक एक झील का निर्माण किया था। जेमोलो जिकल इंस्टीट्यूट आफ अमेरिका के अनुसार १८९६ तक भारत दुनिया के लिए एकमात्र हीरे का स्रोत था। एक अमेरिकन संस्था ने माना था कि वेतार के तार के प्रणेता प्रो. जगदीश बोस थे न कि मारकोनी इन संक्षिप्त तथ्यों के आलोक में कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा आरम्भ से ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन के साथ ही वैश्विक ज्ञान में अग्रणी रही है।

भारतीय ज्ञान परंपराः वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आधार

भारतीय ज्ञान परंपरा और दृष्टिकोण में आध्यात्मिक दार्शनिक विचारों के एकीकरण पर बल देती है। ज्ञान एक तरफ भौतिक स्तर पर तथा दूसरी तरफ आध्यात्मिक स्तर पर विश्व को समझने पर बल देता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण आयुर्वेद के सिद्धांत हैं जो संपूर्ण स्वास्थ्य में भौतिकी के साथ-साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर भी बल देते हैं। ब्रिटिश काल में भारतीय ज्ञान का एक तरफ शोषण हुआ दूसरी तरफ पाश्चात्य ज्ञान के एकीकरण से अपने मूल रूप से बिरल हुई तथा पाश्चात्य प्रभाव से भारतीय मनीषा ने कृषि और चिकित्सा के क्षेत्र में अत्यधिक शोध भी किये। इसी दौरान १८७६ में जगदीश चंद्र बोस ने विज्ञान की उन्नति के लिए एक संगठन की स्थापना की, जिस संस्था ने उस दौरान के भारतीयों में जनजीवन की जरूरतों पर शोध प्रारंभ किया। इस संस्था के माध्यम से सभी भारतीय वैज्ञानिक

संस्थागत रूप से एक धरातल पर जुड़े। आजादी के बाद पंडित नेहरू ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बढ़ावा पर जोर दिया तथा अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज' में ज्ञान के तार्किक और विश्लेषणात्मक सोपान पर बल दिया। नेहरू जी का उद्देश्य मात्र विज्ञान को बढ़ावा देना नहीं बल्कि ऐसे नागरिक तैयार करना था जो वैज्ञानिक मनोवृत्ति को बढ़ावा दे, जो सामाजिक चुनौतियों का सामना तर्क और साक्ष्यों के आधार पर करें। १९५८ में भारत की पहले वैज्ञानिक नीति प्रस्ताव को नेहरू जी के नेतृत्व में भारतीय संसद ने अपनाया जिसका उद्देश्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी को राष्ट्रीय विकास, आर्थिक प्रगति और सामाजिक परिवर्तन के लिए एक हथियार के रूप में उपयोग करना था जिससे देश में वैज्ञानिक सोच और दृष्टिकोण का विकास हो और एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना में विज्ञान और तकनीकी राष्ट्रीय प्रगति का उपकरण बने इसके पश्चात् निरंतर सामाजिक और सरकारी संस्थाओं द्वारा भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास हेतु प्रयास होते रहे हैं। प्रौद्योगिकी के नीति वक्तव्य १९८३ विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति २००३ विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं नवचार नीति २०१३ इत्यादि प्रयास इस दिशा में होते रहे हैं।

वर्तमान स्थिति और चुनौतियां

भारतीय ज्ञान परंपरा के लम्बे गौरवशाली इतिहास के बाद भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण या संस्कृति का विकास चुनौती पूर्ण रहा है। भारत में आईआईटी और अन्य संस्थान, अनुसंधान और विकास के लिए समर्पित अन्यान्य संस्थाओं के बावजूद भी जनमानस में छद्म विज्ञान रूढ़िवादिता और तार्किक ज्ञान विज्ञान का सर्वदा अभाव पाया जाता है। वर्तमान समय में सरकार ने बच्चों के लिए विज्ञान कांग्रेस का आयोजन करना प्रारंभ किया जिससे उन्हें तार्किक चिंतन तथा दृष्टिकोण का विकास हो। राष्ट्रीय डिजिटल साक्षरता मिशन के माध्यम से बच्चों को आवश्यक वैज्ञानिक कौशल का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। बढ़ती आबादी और बदलती दुनिया के साथ तालमेल बढ़ाने के लिए भारत में जरूरी है अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का वैश्विक स्तर पर परीक्षण, अनुप्रयोग और तथ्यात्मक विवेचन। भारतीय शोध पत्रों के प्रकाशन के मामले में भारत की स्थिति सुधरी है परंतु गुणवत्ता और उच्च स्तरों पर उनकी स्वीकृति के साथ-साथ बाद में उनकी उपयोगिता कम है। देश के सर्वोत्तम संस्थानों के छात्र पढ़ाई पूरी करने के बाद अक्सर विदेश चले जाते हैं। रोजगार की कमी नवाचार के लिये भौतिक खोज और उनके अनुप्रयोग की कमी भी एक प्रमुख समस्या है। वर्ष २०२० की विज्ञान प्रौद्योगिकी और नवाचार नीति के अनुसार भारत

को सतत विकास मार्ग पर आगे बढ़ाने तथा आत्मनिर्भर भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में पारंपरिक ज्ञान प्रणाली विकसित करने, स्वदेशी प्रौद्योगिकी के विकास पर अधिक जोर देने तथा जमीनी स्तर पर नवाचारों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के माध्यम से भारत के परंपरागत विज्ञान और ज्ञान को शिक्षा का आवश्यक अंग बनाया है जिससे अत्यधिक समेकित और संतुलित जीवन दर्शन और विज्ञान का विकास हो और मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक विकास की दशा दिशा को निर्धारित करने मैं योगदान हो। पर्यावरण परिवर्तन, स्वास्थ्य समेकित विकास इत्यादि के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक आयाम प्रदान करता है।

निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं कि वैज्ञानिक सोच/दृष्टिकोण के बिना एक समाज के रूप में जीवित रह पाना कठिन है। इस सोच को आविष्कार और विकास की प्रक्रिया में आवश्यक रूप से योगदान दिए बिना भी विश्व के अन्य हिस्सों में जो विकसित किया गया, सीखा गया है, उसे स्वीकार करके भी प्राप्त किया जा सकता है हमारा अतीत बताता है कि विचार, स्वातंत्र्य रखा है और नवीन प्रयोगों के प्रति प्रवृत्ति यह दोनों हमारी परंपराएं है। भारत ने यूनान, अरब, मिस्र, फ्रांस और चीन के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान का सदा आदान-प्रदान किया है और सबके सहयोग से रसायन, आयुर्वेद तथा ज्योतिष ही नहीं समस्त शास्त्रीय विषयों की अभिवृद्धि की। यह हमारी पैतृक प्रवृत्ति आज भी हमें उत्साहित कर सकती है और देश के गौरव को उन्नत करने में अवश्य सहायक हो सकती है। भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल अवधारणा को उजागर कर हम विश्व गुरु बन सकते हैं और उन पर शोध करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग करके समकालीन मुद्दों को हल करने में इसे लागू कर सकते है। तेजी से बदलते हुए प्रौद्योगिकी संचालित समाज और दुनिया में किसी भी व्यक्ति के लिए जीवन की गुणवत्ता और सामुदायिक कल्याण का अत्यधिक महत्त्व है। भारतीय ज्ञान प्रणाली दुनिया को ईश्वर की अभिव्यक्ति के रूप में देखती है, प्रकृति के साथ सद्भाव और सामंजस्य से रहने के महत्त्व पर जोर दिया जाता है। योग और आयुर्वेद जैसे अभ्यास समग्र स्वास्थ्य, प्रकृति और उसके तत्त्वों के प्रति श्रद्धा व कल्याण पर ध्यान केंद्रित करती है। कुल मिलाकर प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं में अंतर्निहित वैज्ञानिक अवधारणाओं को जब दर्शन और आधत्मिकता के साथ एकीकृत किया जाता है, तो वे मानव कल्याण में सुधार के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है।

■

रील संस्कृति या भाण परम्परा (अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता या आत्मप्रदर्शन का उन्माद)

*रंजीत कुमार

आधुनिक संसार का मनुष्य अभिव्यक्ति की अभूतपूर्व स्वतंत्रता के युग में जी रहा है। बढ़ते हुए संचार के उपक्रमों ने प्रत्येक व्यक्ति को सोशल मीडिया से जोड़ दिया है। इस आधुनिक समाज ने प्रत्येक व्यक्ति को कैमरा, मंच और दर्शको की त्रिवेणी में एक साथ आप्लावित कर दिया है। परिणामस्वरूप 'रील' बनाना अब केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि एक प्रकार की सामाजिक प्रवृत्ति हो गई है। यह प्रवृत्ति अब आत्मप्रदर्शन के उन्माद की विभीषिका बन गई है। जिससे जीवन का कोई भी क्षण अब निजी नहीं रह गया है। अब प्रत्येक दिनचर्या, जीवन की सभी यात्राएं केवल कैमरे की परिधि के चारों ओर नृत्य करती प्रतीत हो रही है।

आज का मनुष्य केवल जीना नहीं चाहता, वह अपने जीवन को निरंतर प्रदर्शित करना चाहता है। यह प्रवृत्ति अब आत्म-अभिव्यक्ति से आगे बढ़कर आत्म-प्रदर्शन की प्रतिस्पर्धा बन गई है।

इस विषय पर चिंतन करने पर प्रश्न उठता है कि क्या यह विधा नई मानसिकता की उपज है अथवा हमारी विशाल साहित्य परम्परा में इसका कोई स्वरूप पहले से विद्यमान रहा है?

भारतीय आचार्य परंपरा में अग्रणी नाट्य शास्त्र के प्रणेता महामुनि भरत की नाट्य परम्परा इस प्रश्न का गहरा उत्तर देती है। आपके ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में रूपक (नाटक)के विषय में कहा गया है-

"नाट्यं तु रूपकं ज्ञेयं नानावस्थोपशोभितम्।
रसभावसमायुक्तं नानावृत्तिसमन्वितम्॥"

अर्थात् नाट्य वह है, जिसमें जीवन की विविध अवस्थाएँ, रस और भावों का संतुलित समन्वय हो। यह केवल प्रदर्शन नहीं, बल्कि जीवन का सार्थक अनुकरण है।

उपरूपक के संदर्भ में कहा गया है-

"रूपकादल्पविस्तारं ह्युपरूपकमुच्यते।
रसभावक्रियायुक्तं लघुनाट्यं प्रकीर्तितम्॥"

---

*(शोधार्थी संस्कृत साहित्य), बाराबंकी, उत्तर प्रदेश

इस प्रकार रूपक परम्परा के १० भेदों में से ' भाण ' एक अत्यंत रोचक नाट्यरूप है। इसके लक्षण के विषय में आचार्य भरत लिखते है कि–

"एकपात्रो भवेच्छुद्धो भाणो हास्यरसाश्रयः।

आत्मसंवादसंयुक्तो धूर्तनायकसंश्रयः॥"

भाण में एक ही पात्र मंच पर उपस्थित होकर विभिन्न पात्रों का अभिनय करता है, और हास्य के माध्यम से समाज की विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य करता है। इस परंपरा में अभिनय साधना है, अभिव्यक्ति उत्तरदायित्व है।

भाण के संदर्भ में यदि आज की रील संस्कृति पर दृष्टिपात किया जाए तो एक विचित्र समानता दिखाई देती है– दोनों में प्रायः एक व्यक्ति, एक कैमरा, और एकल अभिनय। मानो भाण (रूपक / नाटक का एक प्रकार) की परम्परा डिजिटल रूप में लौट आई हो। किन्तु यहीं से मूल अंतर प्रारंभ होता है।

शास्त्रीय भाण (रूपक) समाज को आईना दिखाता था, जबकि आज की अनेक रीलें केवल स्वयं को दिखाने तक सीमित हो गई हैं। भाण परंपरा में समाज की विसंगतियों के प्रति व्यंग्य था, जबकि रील परंपरा में निजता का प्रदर्शन मात्र है, वहाँ मानसिक चेतना थी, यहाँ प्रायः सामाजिक चकाचौंध है। इस रील परंपरा में लोगों की 'लाइक' और 'फॉलोअर' की अंधी दौड़ ने रचनात्मकता को पीछे ढकेल दिया है, जिससे दुष्परिणाम भी स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। प्रमुख रूप से व्यक्तित्व का विखंडन (मनुष्य वास्तविक जीवन से अधिक आभासी छवि को संवारने में लगा है।)

संवेदनहीनता का प्रसार (दुर्घटनाएँ, पीड़ा, यहाँ तक कि निजी क्षण भी 'कथावस्तु' का आधार बनते जा रहे हैं।)

अश्लीलता और बनावटीपन का सामान्यीकरण (लोकप्रियता के लिए मर्यादाएँ नष्ट की जा रही हैं।)

मानसिक दबाव (दूसरों की 'परफेक्ट' दिखने वाली जिंदगी देखकर समाज में हीनभावना और असंतोष बढ़ रहा है।)

यह समस्या यहीं विराम नहीं लेती है इस परम्परा के दर्शकों में मुख्य रूप से युवा पीढ़ी में त्वरित सफलता की लालसा इतनी बढ़ रही है कि परिश्रम, साधना और ज्ञान के प्रति धैर्य कम होता जा रहा है। ऐसे समय में यह श्लोक विशेष रूप से स्मरणीय है–

“उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥”

अर्थात् सफलता केवल परिश्रम से मिलती है, न कि क्षणिक प्रसिद्धि के मोह से।

इसी प्रकार–

“विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्मः ततः सुखम्॥”

यह श्लोक हमें याद दिलाता है कि वास्तविक उन्नति का मार्ग ज्ञान, विनय और संतुलन से होकर गुजरता है, न कि केवल प्रदर्शन से।

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि रील संस्कृति स्वयं में पूर्णतया दोषपूर्ण नहीं है। यह एक शक्तिशाली माध्यम है। प्रश्न केवल उसके उपयोग का है, यदि इसका उपयोग ज्ञान, संस्कृति, भाषा और समाजोपयोगी संदेशों के प्रसार के लिए किया जाए तो यही माध्यम नई पीढ़ी को दिशा दे सकता है और यदि दुरुपयोग किया जाए तो यह परम्परा अपयश एवं पतन की खाई में मानव समाज को पतित कर देगी। सारांशतः यह कहना सम्यक् होगा कि रील संस्कृति हमारे समय का दर्पण है, पर यह हम पर निर्भर करता है कि हम इसमें केवल अपना चेहरा देखते रहें, या इसे ऐसा दीपक बनाएं जो समाज को भी प्रकाशित कर सके ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को आत्मसंयम और उत्तरदायित्व के साथ जोड़ा जाए, अन्यथा यह स्वतंत्रता ही स्वच्छंदता (उच्छृंखलता) में परिवर्तित होकर समाज के मूल्यों को क्षीण कर देगी।

श्री गुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्दविग्रहम्।
यस्य सन्निधिमात्रेण चिदानन्दायते तनुः ॥

श्री गोरखनाथ जी अपने गुरुदेव मत्स्येन्द्रनाथ की वंदना करते हुए कहते हैं– जो साक्षात् परमानन्द हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप आनन्द विग्रह हैं, जिनके सान्निध्य मात्र से यह शरीरस्थ जीवात्मा चिदानंद, चिन्मय और परमानंदाकार हो जाता है।

गुरु निस्सन्देह समस्त अज्ञान–अन्धकार दूर करने वाला महान् प्रकाश धारण करता है अथवा साक्षात् प्रकाश स्वरूप है।

विवेक मार्तण्ड

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज

गुरु पूर्णिमा

***डॉ० राकेश कुमार तिवारी**

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान पूजनीय तथा सर्वोपरि माना जाता है। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, तदनन्तर गुरु देवो भव की परिकल्पना सुनिश्चित है। माता और पिता के द्वारा जन्म के पश्चात् गुरू ही मार्गदर्शक तथा प्रेरक होता है। इसीलिए गुरु सर्वोच्च है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

गुरु शब्द में 'गु' शब्द अन्धकार तथा 'रु' शब्द उस अन्धकार का निरोधक है। अतः अन्धकार का निरोध करने के कारण ही गुरु शब्द की सार्थकता सिद्ध होती है–

'गु' शब्दस्त्वन्धकार स्यात् 'रु' शब्दस्तु निरोधकः।

अन्धकार निरोधत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ॥

भारतीय संस्कृति में गुरु–शिष्य परंपरा का भी उत्कृष्ट स्थान है, अस्तु इसी गुरु–शिष्य परम्परा के सम्मान में आषाढ़ मास की पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व मनाया जाता है। यह दिवस वेदों का व्यास महाभारत तथा पुराणों की रचनाकर भारतीय ज्ञान परंपरा को अमरत्व प्रदान करने वाले महर्षि वेदव्यास की जयन्ती के रूप में भी प्रसिद्ध है। अतः इस दिवस को 'व्यास पूर्णिमा' भी कहा जाता है।

गुरु पूर्णिमा केवल एक धार्मिक उत्सव ही नहीं अपितु आत्मचिंतन, संस्कार तथा कृतज्ञता का महापर्व है। भारतीय संस्कृति में गुरु–शिष्य परम्परा श्रद्धा–विश्वास तथा समर्पण पर आधारित रही है। गुरु अपने प्रकाश से शिष्य के ज्ञानचक्षु को उन्मीलित कर देता है –

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।

चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

गोरखनाथ जी की दृष्टि में नाथयोग साधना का मार्गदर्शी गुरु वह है जो

---

*प्रकाशन विभाग, श्री गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर

अपने उपदेश के अनुरूप उच्च स्वभाव का परिचय देकर साधक शिष्य के मन में दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर उपदेश को जीवन में उतारने पर योग सिद्धि अनायास सहज प्राप्ति करा दे। उन्होंने स्पष्ट कहा है **''रहणी रहे सो गुरु हमारा।''** गुरु की पूर्ण कृपा साधक की साधना में जब अवतरित होती है तब उसे अनुभव होता है कि परब्रह्म शिव साक्षात् गुरु रूप में हमारे शरीर में ही विद्यमान है।

सिद्धसिद्धान्त पद्धति में वर्णित है कि बुद्धिवृत्ति के विस्तार के उदय स्वरूप चिद्विलास आत्मप्रकाश में ही गुरु के अनुग्रहप्राप्त शिष्यों में मानस व्यापार में सिद्ध होने पर विश्रान्ति की स्थिति सम्भव होती है। उसी विश्रान्ति में समष्टि - व्यष्टि रूप पदपिण्ड का ऐक्य सामरस्य स्थापित होता है। जीवात्मरूप शिष्य परमात्म पद में गुरु की कृपा से आत्मप्रतिष्ठित हो जाता है।

संवित्क्रिया विकरणोदयचिद्विलासो, विश्रान्तिमेव भजतां स्वयमेव भाति ।
ग्रस्ते स्ववेगनिचये पदपिण्डमैक्यं, सत्यं भवेत्समरसं गुरुवत्सलानाम्।।

नाथयोग साधना के मार्गदर्शक महायोगी गोरखनाथ जी का स्पष्ट उद्घोष है कि गुरुकृपा से ही मैंने आत्मब्रह्म का साक्षात्कार किया है। सद्गुरु के उपदेशामृत से ही मुझे ज्ञान रूपी दीपमणि की प्राप्ति हुयी तथा आकाश-पाताल, मृत्युलोक तीनों मेरे ज्ञान नेत्र में प्रकाशित हो गये -

प्रथमे प्रणऊँ गुरु के पाया । जिन मोहि आत्मब्रह्म लखाया ।।
सतगुरु सबद कह्या ते बूझा । तृहूँ लोक दीपक मनि सूझा ।।

गोरखनाथजी का कथन है कि शिष्य के अन्तःकरण में स्थित अज्ञान का मूलोच्छेद कर आत्मानन्दस्वरूप चैतन्य विश्वान्ति का उपदेश देने वाला गुरु ही है-

'गुरुरिति गृणाति शं सम्यक चैतन्यविश्रान्तिमुपदिशति विश्रान्त्या स्वयमेव परात्परं परपदमेव, प्रस्फुटं भवति तत्क्षणात् साक्षात्कारो भवति।'

निस्सन्देह गुरू परब्रह्म है, परमगति एवं पराविद्या है, वह परम सम्पत्ति एवं परमपद है। वही योग महाज्ञान का शिवस्वरूप परम उपदेष्टा है। वह अक्षय ब्रह्मज्योति, सर्वथा वंद्य एवं उपास्य है।

■

परंपरायें स्पंदित गुरु-तत्त्वः एक दार्शनिक विमर्श और जीवन-साधना

***प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल**

भारतीय संस्कृति कोई जड़ भूगोल नहीं है, न ही यह अतीत के कुछ स्मारकों का मृत संग्रह है। यह तो चेतना का एक अंतहीन, ऊर्ध्वगामी प्रवाह है, जिसकी धड़कन इसके 'गुरु-तत्त्व' में समाहित है। जब हम भारत की माटी में खड़े होकर 'गुरु' शब्द का उच्चारण करते हैं, तो हमारे भीतर केवल किसी कक्षा में व्याख्यान देते शिक्षक की छवि नहीं उभरती। गुरु हमारे लिए कोई ऐसी बाहरी या यांत्रिक सत्ता नहीं है जो कुछ सूचनाएं या सामाजिक नियम हमारे हाथ में थमा दे। भारतीय चिति में गुरु एक आत्मीय अनुभूति है - एक ऐसा सघन और करुणामय प्रकाश, जो हमारी आत्मा के एकांत अंधेरों को समेटकर हमें स्वयं हमारे वास्तविक स्वरूप से मिला देता है।

वैचारिक धरातल पर यदि हम इस परंपरा का अनुशीलन करें, तो गुरु-परंपरा पुस्तकालयों में बंद रहने वाला कोई शुष्क विमर्श नहीं है। यह तो इस देश के लोक-जीवन का वह सहज, प्राणापान संस्कार है जिसके बिना हमारा मनुष्य होना, हमारी वैचारिक यात्रा और हमारी सांस्कृतिक अस्मिता सब अधूरी रह जाती है।

उपनिषद् का सामीप्य-बोधः

हमारी आध्यात्मिक और दार्शनिक यात्रा उपनिषदों के उस आदिम, ऋत-सम्मत और आत्मीय संवाद से प्रारंभ होती है, जिसका मूल अर्थ ही है-''गुरु के समीप, नीचे, पूर्ण निष्ठा और विनीत भाव से बैठ जाना।'' यह बैठना केवल दो शरीरों की भौतिक दूरी का घट जाना नहीं है। यह तो एक ऐसा दुर्लभ और जादुई क्षण है जहाँ शिष्य अपनी सारी चालाकियाँ, अपनी सारी योग्यता के अहंकार और अपनी सामाजिक पहचान को बाहर छोड़कर गुरु के समक्ष पूर्णतः निश्छल, नग्न और रिक्त होकर बैठ जाता है। जब तक घड़ा खाली नहीं होगा, तब तक उसमें अमृत कैसे भरा जाएगा? प्राचीन भारत के गुरुकुल इसीलिए आज के व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों जैसे नहीं थे; वे तो मनुष्य की वृत्तियों को परिष्कृत करने वाली आत्मीय वेधशालाएँ थीं।

---

*पूर्व कुलपति, अध्यक्ष, दर्शनसंकाय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

इस सामीप्य की पराकाष्ठा को जब हम मध्यकालीन संतों की वाणी में देखते हैं, तो संत कबीरदास का वह अमर दोहा हमारे सामने आता है जहाँ वे गुरु को गोविंद (ईश्वर) से भी उच्चतर सोपान पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। कबीर जब कहते हैं-**''बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय''**-तो वे किसी व्यक्ति विशेष की देह-पूजा नहीं कर रहे होते। वे तो बहुत लाड, अधिकार और आत्मीयता से उस अमूर्त 'गुरु-तत्त्व' की वंदना करते हैं, जो उस अगोचर, अनंत और निराकार परमात्मा को इस दृश्य जगत् में हमारे लिए साकार, सुलभ और अनुकरणीय बना देता है। ईश्वर यदि सत्य है, तो गुरु उस सत्य तक पहुँचने का जीवंत मार्ग है। ईश्वर यदि साध्य है, तो गुरु वह साधन है जिसके बिना साध्य की कल्पना ही भ्रामक हो जाती है। यह भारतीय व्यक्ति-व्यंजक परंपरा का वह अनुपम सौंदर्य है जहाँ कठिन से कठिन दर्शन भी आचरण के रस में डूबकर बेहद सरल और आत्मीय हो जाता है।

इतिहास और पुराणों के झरोखे से: जहाँ श्रद्धा ही विधाता का नियम बदल देती है

हमारे इतिहास, महाकाव्यों और पुराणों में सुरक्षित गुरु-शिष्य की कथाएँ कोई मनोरंजन के आख्यान नहीं हैं। वे तो मानवीय संबंधों के शिखर, अटूट भरोसे और प्रेम के ऐसे जीवंत दस्तावेज हैं जो सदियों बाद आज भी हमारे भीतर एक सात्त्विक स्पंदन पैदा करते हैं। जरा अपनी आँखें मूँदकर उस दृश्य की कल्पना कीजिए-जो श्रीकृष्ण पूरे ब्रह्मांड के नियंता हैं, जिनकी एक भृकुटि के इशारे पर काल चक्र घूमता है, वे सांदीपनि मुनि के आश्रम में एक साधारण बालक की तरह अपने दरिद्र सखा सुदामा के साथ नंगे पैर जंगलों में भटक रहे हैं और सूखी लकड़ियाँ बीन रहे हैं। जो राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, वे महर्षि विश्वामित्र के पीछे-पीछे बहुत शांत और विनीत भाव से सुदूर वनों की ओर चल पड़ते हैं, जहाँ उन्हें नंगे पैर काँटों पर चलना है और असुरों का निवारण करना है। यह दृश्य हमें क्या सिखाते हैं? यह प्रतिपादित करते हैं कि ज्ञान कितना भी विराट् हो, वह सदा विनय और समर्पण की कोख से ही जन्म लेता है।

जब हम शिष्य की निष्ठा के शिखर को छूना चाहते हैं, तो हमारी उंगली अनायास ही वनों में भटकते उस भील बालक एकलव्य पर जाकर ठहर जाती है। एकलव्य की कथा को यदि हम केवल एक अंगूठा दान करने की क्रूर घटना के रूप में देखेंगे, तो

हम उसके भीतर छिपे दार्शनिक मर्म को खो देंगे। दार्शनिक धरातल पर एकलव्य की साधना इस शाश्वत सत्य की उद्घोषणा है कि यदि शिष्य के अंतःकरण में गुरु के प्रति अखंड और निश्छल श्रद्धा हो, तो गुरु की भौतिक अनुपस्थिति, उनकी उपेक्षा या समाज की वर्जनाएँ भी साधक का मार्ग नहीं रोक सकतीं। वह मिट्टी की जड़ मूरत से भी उस चेतना और विधा को खींच लेता है जो साक्षात् द्रोणाचार्य के सामने बैठे अर्जुन को भी विस्मित कर देती है।

इसी प्रकार, जब हम राष्ट्र के निर्माण की बात करते हैं, तो आचार्य चाणक्य और चंद्रगुप्त मौर्य की जोड़ी हमारे सामने आती है। यह संबंध इस ऐतिहासिक और दार्शनिक तथ्य का साक्ष्य है कि जब एक गुरु की दूरदर्शी, निस्पृह और निस्वार्थ सोच को शिष्य का संकल्प और अटूट भरोसा मिल जाता है, तो मगध के बिखरते साम्राज्य की नियति बदल जाती है और एक अखंड, सशक्त राष्ट्र का पुनर्जन्म होता है। गुरु केवल मोक्ष नहीं देता, वह संसार को सुंदर और सुव्यवस्थित बनाने का सामर्थ्य भी देता है।

नाथ संप्रदाय के आलोक में: काया की साधना और गुरु की करुणा

इस वैचारिक और दार्शनिक यात्रा को जब हम भारत के जनमानस और लोक-जीवन के और करीब ले जाते हैं, तो हमारा साक्षात्कार 'नाथ संप्रदाय' के अत्यंत महिमामयी स्वरूप से होता है। यहाँ आकर गुरु-परंपरा केवल शास्त्रार्थ या बौद्धिक चर्चाओं का विषय नहीं रह जाती, बल्कि वह सीधे हमारी काया, हमारी सांसों, हमारी धमनियों और हमारे दैनिक जीवन की साधना का हिस्सा बन जाती है। स्वयं आदिनाथ भगवान शिव की परम चेतना से प्रसूत यह अलख जब मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) से होती हुई महायोगी गुरु गोरखनाथ तक पहुँचती है, तो वह शुष्क वेदांत के कपाट तोड़कर आम आदमी के लिए 'काया-साधना' और 'अंतर्यात्रा' का एक अत्यंत व्यावहारिक और जादुई महामार्ग बन जाती है।

नाथ पंथ की मूल दार्शनिक प्रस्थापना ही लोक-अनुभूति पर टिकी है-"**जोई जोई पिंडे सोई ब्रह्मांडे**"। अर्थात्, जो कुछ इस अनंत आकाश, तारों, सूर्य और ब्रह्मांड में व्याप्त है, वह सब कहीं बाहर नहीं, बल्कि तुम्हारी इसी हाड़-मांस की छोटी सी देह (पिंड) के भीतर संकुचित रूप में अवस्थित है। लेकिन त्रासदी यह है कि हम अज्ञान वश बाहर भटक रहे हैं, हमें अपने ही भीतर छिपे इस

महाकोश का भान नहीं है। गुरु वही सिद्ध पारखी है जो अपनी कारुणिक कटाक्ष–दृष्टि से, अपने स्नेहिल हाथों से शिष्य की पीठ थपथपाता है और उसके भीतर सोई हुई उस परम चैतन्य महाशक्ति–कुंडलिनी–को जाग्रत करने का विज्ञान सिखाता है।

नाथ पंथ में जो 'कानफटा दीक्षा' की परंपरा है, जिसमें कानों की लौ को चीरकर स्फटिक या मिट्टी के बड़े–बड़े कुंडल (मुद्रा) पहनाए जाते हैं, उसे केवल एक बाह्य आनुष्ठानिक क्रिया समझना भूल होगी। यह मूलतः एक गहरा दार्शनिक रूपांतरण है। यह इस बात की आंतरिक और मानवीय स्वीकृति है कि अब शिष्य के कान संसार की निंदा–स्तुति या मायावी कोलाहल को सुनने के लिए बंद हो चुके हैं, वे अब केवल गुरु की वाणी और भीतर गूँजने वाले उस अनाहत नाद को सुनेंगे।

गुरु जब दीक्षा के समय शिष्य के कर्ण–मूल में शब्द फूंकता है, तो वह कोई लौकिक वर्णमाला या भाषा नहीं होती। वह तो चेतना का वह गुप्त स्पंदन होता है जो साधक को भीतर से इतना अभेद्य और मजबूत कर देता है कि वह संसार के सारे सुख–दुख, मान–अपमान के थपेड़ों से बेअसर होकर 'अवधूत' या 'सिद्ध' की निर्विकल्प अवस्था में लीन हो जाता है। नाथ साहित्य चीख–चीख कर गवाही देता है कि गुरु ही वह आध्यात्मिक पारस है जो वासनाओं के जंग लगे लोहे को साधना के विशुद्ध चौबीस कैरेट सोने में परिवर्तित कर देता है। गुरु की शरण में आए बिना कोई भी जीव शिव नहीं हो सकता।

दार्शनिक अन्वेषणः गुरु, शिष्य और ज्ञान का त्रैक भंग

यदि हम इस परंपरा के गहरे दार्शनिक मर्म में उतरें, तो भारतीय प्रज्ञा मानती है कि अज्ञान कोई स्थायी वस्तु नहीं है, यह केवल प्रकाश की अनुपस्थिति है। जैसे एक अंधकारमय कक्ष में दीपक के प्रवेश करते ही अंधकार कहीं भागता नहीं, बल्कि विलीन हो जाता है, वैसे ही गुरु का व्यक्तित्व शिष्य के जीवन में प्रवेश करता है। गुरु कोई नया ज्ञान पैदा नहीं करता; वह तो शिष्य के भीतर पहले से ही मौजूद उस परम ज्ञान के ऊपर जमी हुई अज्ञान और संस्कारों की धूल को धीरे–धीरे अपनी करुणा के जल से धो देता है।

यहाँ 'त्रिपुटी–भंग' की स्थिति पैदा होती है। साधना की एक उच्च अवस्था ऐसी आती है जहाँ ज्ञाता (शिष्य), ज्ञेय (ज्ञान) और ज्ञान का प्रदाता (गुरु)ये तीनों

अलग-अलग न रहकर एक अखंड चेतना में तब्दील हो जाते हैं। शिष्य जब पूरी तरह मिट जाता है, तब वह गुरु ही हो जाता है। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में गुरु के चरणों की धूल को भी माथे पर लगाने का विधान है, क्योंकि वह धूल पैर की नहीं, बल्कि उस मार्ग की है जो हमें अमरता की ओर ले जाता है।

एक आत्मीय और संस्कारित उपसंहार

निष्कर्ष के धरातल पर ठहरकर यदि हम विचार करें, तो भारत की यह गुरु परंपरा कोई बीते हुए कल की मरुभूमि नहीं है, यह हमारी अस्मिता का हरा-भरा उपवन है, हमारा स्पंदित वर्तमान है। गुरु उस माँ की तरह है जो अबोध बच्चे को उंगली पकड़कर जीवन के उबड़-खाबड़ रास्तों पर चलना सिखाती है, और वह उस कुशल कुंभकार की तरह भी है जो मिट्टी के कच्चे घड़े को सुंदर और उपयोगी आकार देने के लिए बाहर से तो तीखी थपकी मारता है, लेकिन भीतर से हमेशा अपनी हथेली का कोमल, स्नेहमय सहारा दिए रहता है ताकि घड़ा टूट न जाए।

आज का जो समय है, वह गहराइयों से कटकर सतह पर तैरने का समय है। आज जब मानवीय मूल्य बिखर रहे हैं, संवेदनाएं स्खलित हो रही हैं, और मनुष्य अत्यधिक सूचनाओं के बोझ के नीचे दबकर अकेलेपन और भटकाव से जूझ रहा है, तब उपनिषदों का वह निश्छल सामीप्य-भाव और नाथपंथियों की वह अडिग, कठोर योग-निष्ठा ही हमें पुनः अपनी जड़ों की ओर लौटने का संबल दे सकती है। गुरु के चरणों में झुकना दरअसल किसी बाह्य सत्ता के सामने खुद को छोटा या हीन बनाना नहीं है। यह तो अपने ही भीतर छिपे उस असीम संभावनाओं के अनंत आकाश को छू लेने का, अपनी चेतना को संस्कारित करने का और मनुष्य से देवता हो जाने का एक अत्यंत पावन और आत्मीय महायज्ञ है।

तावज्जीवो भ्रमत्येव यावत्तत्त्वं न विन्दति ।

अर्थात् जीवात्मा तब तक संसार बंधन में भ्रमित रहता है, जब तक वह इस चक्र में ध्यानस्थ होकर परमतत्त्व परमात्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त करता है, परमात्म साक्षात्कार नहीं कर लेता है।

गुरुश्री गोरखनाथ जी

■

श्री गोरखनाथ मन्दिर के प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	मूल्य
1. गोरखदर्शन	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	150.00
2. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ	डॉ. भागवती प्रसाद सिंह	80.00
3. नाथ योग	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	10.00
4. आदर्श योगी	रघुनाथ शुक्ल	40.00
5. महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
6. गोरखवानी	रामलाल श्रीवास्तव	210.00
7. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
8. श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	60.00
9. अमनस्क योग	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
10. गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
11. विवेक मार्तण्ड	रामलाल श्रीवास्तव	75.00
12. महार्थ मंजरी	रामलाल श्रीवास्तव	80.00
13. गोरखचरित	रामलाल श्रीवास्तव	120.00
14. हठयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
15. सिद्धसिद्धान्तपद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	150.00
16. योग रहस्य	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	25.00
17. योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	6.00
18. शाबर चिंतामणि	नित्यानाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ	7.00
19. योगी सम्प्रदाय -नित्यकर्म संचय	महन्त योगी आदित्यनाथ	90.00
20. गोरख चालीसा	श्री गोरखनाथ प्रकाशन	10.00
21. नाथसिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	70.00
22. नाथ पंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में	विष्णुदत्त कुकरेती	270.00
23. अमरकाय महायोगी गोरखनाथ	श्रीमती माया देवी	10.00
24. युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा	महन्त योगी आदित्यनाथ	12.00
25. गोरखनाथ और नाथसिद्ध	डॉ. अनुज प्रताप सिंह	230.00
26. गोरखदर्शन	विजय पाल सिंह	40.00
27. तन प्रकाश	श्री श्री 108 योगी चुन्नीनाथ जी	20.00
28. हठयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	150.00
29. योगिक षट्कर्म	महन्त योगी आदित्यनाथ	21.00
30. नाथ सिद्धों का तात्त्विक विवेचन	अनुज प्रताप सिंह	85.00
31. गोरखमहिमा	महेन्द्र नाथ गोस्वामी	30.00
32. सुभाषित त्रिशती	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
33. राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ (3 खण्ड)	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	1100.00
34. राजयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	150.00
35. Philosophy of Gorakhnath	A-K- Banerjee	175.00
36. An Introduction to Nath-Yoga	A-K- Banerjee	15.00
37. महन्त अवेद्यनाथ स्मृति ग्रन्थ	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	500.00
38. योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	500.00
39. योग एवं महायोगी गोरखनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	175.00
40. महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ	–	40.00
41. श्रीगोरखनाथ मन्दिर एवं गोरखपुर का इतिहास	–	40.00
42. योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	–	40.00
43. युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ	–	50.00
44. राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ	–	50.00
45. गोरखनाथ एवं उनका हिन्दी साहित्य	डॉ. कमल सिंह	175.00
46. गोरखनाथ एवं उनका भाषा अध्ययन	डॉ. उमल सिंह	195.00
47. गोरखनाथ हिन्दी के प्रथम कवि	डॉ. कमल सिंह	95.00
48. Experience of truth seeker	योगी शान्तिनाथ	50.00

एन.पी./जी.आर-१२५/१४ एन.पी./२९०७५/७६

स्वास्थ्य-रक्षा में आम का उपयोग

पका आम स्वाद में मधुर, ठंडा, बलवर्धक, धातुवर्धक, पौष्टिक, भारी, त्रिदोषनाशक, जठराग्नि-उद्दीपक, वीर्यवर्धक, स्निग्ध एवं शौच साफ करने वाला है। यह तृषा, दाह, वायु, पित्त, थकान एवं अरुचि को दूर करने वाला है तथा शरीर में चर्बी एवं मूत्र का प्रमाण बढ़ाता है। पका आम हृदय के लिये हितकारी, शरीर के वर्ण को सुधारने वाला एवं संग्रहणी, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, यकृत-वृद्धि, आँतों की सूजन-जैसे रोग मिटाता है। अच्छा आम वृक्ष पर से उतारने के बाद घास के बीच कृत्रिम गरमी से पकाने पर गुणकारी बनता है। वस्तुत: पका आम गरमी के दिनों में टॉनिक है। पके आम से रक्त में हीमोग्लोबिन (लालकण) बढ़ते हैं एवं कफदोष घटता है। दूध के साथ अच्छा पका आम खाने से वीर्यवृद्धि होती है। आँत, पेट एवं फेफड़ों के अनेक रोग, कमजोरी एवं रक्त की कमी से उत्पन्न दर्द अवश्य दूर होते हैं। पके आम के सेवन से बहुमूत्र एवं प्रमेह भी मिटता है।
पके आम से सातों धातुओं की वृद्धि होने से शरीर का स्वास्थ्य सुधरता है। पका आम दुर्बल, कृश लोगों को पुष्ट बनाने के लिये सर्वोत्तम औषधि एवं खाद्य फल है।

कच्चा एवं स्वाद में खट्टा तथा तिक्त आम खाने से लाभ के बजाय हानि हो सकती है। कच्चा आम खाना हो तो उसमें गुड़, धनिया, जीरा और नमक मिलाकर खा सकते हैं। भुने हुए कच्चे आम के गूदे में जल तथा शक्कर मिलाकर पीने से लू लगने की बीमारी में लाभ होता है। यह 'पना' कहलाता है। कलमी आमों से देशी रेशेदार आम अधिक उपयोगी माना जाता है।

पके आम का रस बलवर्धक, पाचन में थोड़ा भारी, वायु तथा पित्तदोष करने वाला, शौच साफ लाने वाला, वीर्यवर्धक, तृप्ति एवं पुष्टि देने वाला तथा कफ बढ़ाने वाला है। लम्बे समय तक रखा हुआ बासी रस वायु कारक, पाचन में भारी एवं हृदय के लिये अहितकर है।

दूध के साथ कोई भी खट्टा आम नहीं खाना चाहिये; क्योंकि वह रक्त विकार करता है। डिब्बों में पके आम के बासी रस का सेवन हितकर नहीं है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार पका आम पेट को मृदु बनाने वाला, मूत्र लाने वाला, पौष्टिक, तृप्तिदायक, मृदु विरेचक, बाह्य विषप्रकोप एवं जन्तुओं का नाश करने वाला तथा त्वचारोगनाशक होता है।

यूनानी हकीमों के अनुसार पका आम आलस्य को दूर करता है, मूत्र साफ लाता है। टी०बी० मिटाता है। किडनी एवं वस्ति के लिये शक्तिदाता है।

पका आम चूसकर खाना आँख के लिये हितकर है। वीर्य की शुद्धि एवं वृद्धि करता है। शुक्र-प्रमेह आदि विकारों एवं वातादि दोषों के कारण जिनको संतानोत्पत्ति न होती हो उनके लिये पका आम लाभकारक है।

पका आम व्रणरोपक है। इसके सेवन से शुक्राल्पताजन्य नपुंसकता, दिमाग की कमजोरी, अल्सर आदि रोग दूर होते हैं एवं रक्त की शुद्धि होती है। आहार में केवल दूध एवं पके आम का रस लेने से कुष्ठ-रोग मिटता है। आम के वासी रस में सोंठ एवं घी मिलाकर खाने से वह हितकारी बनता है। आम खाने के बाद पानी नहीं पीना चाहिये।

जिस आम का छिलका पतला, गुठली छोटी हो और जिसमें रेशा न हो तथा गर्भदल अधिक हो, ऐसा आम मांस एवं धातुके लिये उत्तम पोषक होता है।
कफदोषजन्य खाँसी एवं श्वास के रोगियों के लिये मधु के साथ आम खाना एवं दूध पीना हितकर नहीं है।

मधु के साथ पके आम के सेवन से क्षय, प्लीहा, वायु एवं कफ दोष दूर होता है। आम के रस में घी डालकर सेवन करने से वह जठराग्निदीपक, बलवर्धक, जख्म भरने वाला तथा वायु एवं पित्तदोष का नाशक बनता है। पके आम के रस के पापड़ (अमावट या आमपापड़) तृषा, उल्टी एवं वायु-पित्तादि दोषों को दूर करते हैं। यह थोड़ा रेचक, रुचिकर तथा पाचन में हल्का होता है और शरीर में स्थित वायुदोष का निवारण करता है। आमवृक्ष के जड़ से लेकर फल तक सभी अङ्ग औषधि की दृष्टि से उपयोगी हैं।

साभार, प्रशान्त कुमार सैनी

प्रकाशक :
श्री गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर-२७३०१५
web: www.gorakhnathmandir.in | E-mail: yogvanigmndr@gmail.com
दूरभाष: (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४, मो.नं.: ९४५२५६९७१७